खून की होली

मध्यकालीन राजपूत-जीवन की वीर-रस-प्रधान
आख्यायिकाएँ

★

लेखक
ठाकुर राजबहादुरसिंह

★

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
अनारकली — लाहौर

प्रकाशक—

राजपाल एण्ड सन्ज़

पुस्तक-विक्रेता, अनारकली, लाहौर ।

मूल्य

[redacted]

1930

मुद्रक—

विश्वनाथ एम० ए०

दी आर्य प्रेस लिमिटिड,

१७ मोहनलाल रोड, लाहौर ।

दो शब्द

आज भारतवर्ष में वीर-रस-पूर्ण साहित्य की आवश्यकता है। भारत माँ के दुलारे सुख की नींद सो रहे हैं, उनकी धमनियों का रक्त ठण्डा पड़ गया है और वे कर्तव्य-पथ से विचलित हो चुके हैं। रत्नगर्भा भारत-जननी परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई है, परन्तु भारत-सपूत घोर आलस्य एवं निष्कर्मण्यता की तन्द्रा में बेसुध पड़े हैं। उनको जागृत कर उनके हृदय में अपने उज्ज्वल अतीत एवं सुनहले भविष्य की प्रसुप्त आकाँक्षाओं को पुनर्जीवित करना वीर-रस-पूर्ण साहित्य का महान् उद्देश्य है। राजपूतों का इतिहास बड़ा विस्तृत तथा वीरता की घटनाओं से भरा होने के कारण वीर-रस-प्रधान-आख्यायिकाओं का एक उपयुक्त विषय बन चुका है। प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान तथा महाराष्ट्र के इतिहास के कुछेक पन्ने लेकर उनका बड़े रोचक एवं जोशीले ढंग से वर्णन किया है। विशेषकर "गढ़ आया—सिंह गया" की कहानी पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

ठाकुर राजबहादुरसिंह इस प्रकार की राष्ट्र-भावनाओं से ओत-प्रोत तथा ओजस्विनी भाषा लिखने में विशेष प्रवीण हैं। वे हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों में से हैं। आशा है कि उनकी इस रचाना को भी पाठक पूर्ववत् अपनाकर राष्ट्रीय साहित्य को प्रोत्साहन देंगे।

—प्रकाशक

इस पुस्तक की प्रथम कहानी—"खून की होली"—
पर लेखक को "क्षत्रिय-इतिहास-अन्वेषक
समिति" द्वारा सर्वोत्तम ऐतिहासिक
कहानी होने के कारण स्वर्ण-
पदक प्रदान किया जा
चुका है।

अनुक्रमणिका

खून की होली

सन्तरी ने सहसा अपना भाला सँभाल लिया और उसके इस तरह अङ्ग-सञ्चालन से उसका जिरह-बख्तर झनझना उठा। इस आकस्मिक आवाज़ से महारानी पद्मिनी की निद्रा भङ्ग हो गई। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और गद्दे के सहारे बैठ कर ऊषाकालीन क्षीण प्रकाश की ओर झरोखे से सभी सुपरिचित वस्तुओं पर दृष्टि दौड़ाने लगीं।

थोड़ी देर बाद वह चुप-चाप धीरे से उठीं और अपने निद्रित प्राणपति की नींद भङ्ग न करने के अभिप्राय से अपने कृश काय पर सुनहरे किनारे वाली मलमल की साड़ी सँभालती हुई धीरे-धीरे झरोखे की ओर बढ़ीं। वह झरोखे पर झुक कर प्रातःकालीन स्वच्छ वायु के शीतल मन्द झकोरों का सुखद स्पर्श प्राप्त कर नीचे के आँगन, मन्दिर की छत और महल के मर्दाने विभाग की ओर दृष्टि दौड़ाने लगीं। उनकी नज़र महल से आगे के सुविस्तृत मैदान, जङ्गल और पहाड़ियों तक पहुँची।

किन्तु जिस समय पद्मिनी की दृष्टि चित्तौड़ को घेरे हुये तातार

सैनिक दल के खेमों पर पड़ी, उस समय उनके कण्ठ-स्वर से एक हल्का-सा शोकोच्छ्वास निकल गया। एक वर्ष से तातार-सेना ने चित्तौड़गढ़ को घेर रखा था और यदि किम्वदन्ती सत्य थी, तो शाहंशाह के दृढ़ निश्चय को पूरा करने के लिए ही यह दल चित्तौड़ दुर्ग को हस्तगत करने तक यहीं टिकने की प्रतीज्ञा कर चुका था।

× × × ×

तातार सैनिकों के शिविर को देख कर प्रभातकालीन मनोमुग्धकारी एवं स्फूर्तिदायक वायुप्रवाह में भी पद्मिनी का मन ठण्डक न पा सका और शोक तथा भीषणता ने उस का स्थान ले लिया। उन्हें अपने सिंहल-द्वीपस्थ शान्तिपूर्ण पितृगृह का स्मरण हो आया। उनके सौन्दर्य ने ही हेलेन की तरह उन्हें भी देवताओं की शतरञ्ज का मुख्य पात्र बना रखा था। जब से महाराणा भीमसिंह उन्हें ब्याह कर चित्तौड़ लाये थे; तभी से वह बेचारी सीसोदिया-वंश पर अहर्निश छाई युद्ध-घटा को शोकसन्तप्त दृष्टि से देखने में लगी हुई थीं। पद्मिनी उस देश में भी अद्वितीय सुन्दरी थीं, जहाँ सौन्दर्य की मर्यादा परम्परा से स्थापित हो चुकी थी। उनके सौन्दर्य की ख्याति राजस्थान की सीमा पार कर दूर दूर तक पहुँच चुकी थी। तातार-राजधानी दिल्ली में भी उनकी सुन्दरता की कहानी सालङ्कार पहुँच चुकी थी। फिर तातार-सम्राट् ऐसी बात सुनने से कैसे वञ्चित रहता? पद्मिनी की सौन्दर्य-गाथा के साथ कल्पना के पङ्ख लगा कर तातार-सम्राट् उसके पीछे उड़कर न जाने कहाँ तक पहुँच गया था। इसलिए उसने अपने शरीर से भी मन का अनुगमन कराने के लिये

यह प्रतिज्ञा कर ली थी, कि उचित-अनुचित जिस प्रकार से हो पद्मिनी को हस्तगत किया जाये। अब तक उसे अपने इस निश्चय को क्रियात्मक रूप देने में सफलता नहीं प्राप्त हुई थी। असफलता से उसका मोह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। अब उसकी सेना चित्तौड़दुर्ग घेर कर उसे भूमिसात् कर देने के प्रयत्न में लगी हुई थी। वह समस्त गढ़-रक्षकों को तलवार के घाट उतार कर और प्रजा को अकाल-पीड़ित करके अपने स्वामी के प्रेम-प्रपञ्च को सन्तुष्ट करने में लगी हुई थी।

× × × ×

प्रात:काल का शान्त वातावरण तुही के कर्कश स्वर से गूँज उठा। सैनिक मृत्यु-मुख में प्रवेश करने की तय्यारी करने लगे। तुही की प्रतिध्वनि से भीमसिंह की भी निद्रा भंग हुई। पद्मिनी अपने पति को शय्या से उठने का उपक्रम करते देख के झरोखे की ओर से उनकी ओर चलीं। भीमसिंह उठ बैठे। उन्होंने अंगड़ाई ली। वीर राजपूत का शौर्यपूर्ण अङ्ग नवस्फूर्ति से भर-सा उठा। उन्होंने अपने सुदृढ़ बाहुपाश को बढ़ाकर पद्मिनी की क्षीण कटि पकड़ ली और उन्हें गद्दे पर अपने निकट बैठा लिया। पद्मिनी की केशराशि को सुहलाते हुए भीमसिंह ने देखा; कि उनके नेत्र डबडबा आये हैं।

भीमसिंह ने कहा—"मेरी कमलिनी!"

उस स्वर में कोमलता तो थी ही, साथ ही कठोरता का भी सम्मिश्रण था। उस समय यदि कोई सैनिक भीमसिंह के इस कण्ठस्वर को सुन पाता, तो उसे आश्चर्य हुए बिना न रहता।

उन्होंने अपना सम्बोधन जारी रखते हुए कहा—"मेरी पद्मिनी, तुम दु:खी क्यों हो ? कौन सी विपद् आ गई है ?"

"कोई नहीं, मेरे स्वामी !" पद्मिनी ने प्रेम और कोमलता का सौरभ प्रसारित करते हुए कहा—"कुछ नहीं हुआ; किन्तु हे भगवन्, कैसी करुणाजनक अवस्था है।" पद्मिनी ने भीमसिंह के कंधे पर क्लान्तभाव से अपना माथा टेकते हुए कहा—"प्राणनाथ ! मनुष्य एक दूसरे को नष्ट करने पर क्यों तुला रहता है ? क्या रक्त-पात और विनाश में ही उसका गौरव छुपा है ? क्या संसार में पहले ही से कम दु:ख है, जो इस प्रकार के सङ्घर्षों से अधिक दु:ख की सृष्टि की जाती है ?" क्या मनुष्य अपने गौरव के लिए कोई और मार्ग नहीं चुन सकता।

"मेरे नाथ" उन्होंने घुटनों के बल बैठ कर कमर से अपने पति का हाथ हटाये बिना ही उनके विशाल मुख-मण्डल की ओर देखते हुए कहना आरम्भ किया—"सभी जानते हैं, कि इस युद्ध का कारण पद्मिनी है। हज़ारों ऐसे नवयुवक जिनकी रेखें भी अच्छी तरह नहीं भिनी थीं, अकाल ही काल के गाल में जा चुके। प्रत्येक घर का कोई न कोई लाल लुट चुका है; फिर भी, यह भीषण रक्तपात जारी है अब यह आप के हाथ में है, कि आप इस देश में पुनः शान्ति स्थापित करें। मेरे—प्राणपति ! पद्मिनी इस विशाल मानव-मेदिनी की रक्षा के लिये अपना बलिदान कर सकती है। मुझे जाने की आज्ञा हो.........."

× × × ×

भीमसिंह ने अपनी विशाल हथेली पद्मिनी के मुख पर रखते हुए तीव्र स्वर से कहा—

"चुप रहो, प्यारी! राजपूत मृत्यु से बचने के लिये अपनी प्रतिष्ठा नहीं गँवाता। उसके पास जो कुछ होता है; वह दृढ़तापूर्वक उसकी रक्षा करता है या फिर रक्षा के प्रयत्न में जान गँवा देता है।"

इसके बाद भीमसिंह ने कोमलभाव से पद्मिनी के केश सुहलाते हुए कहा,—"इस प्रकार के विचारों से तुम चिन्तित न बनो। इस युद्ध का उद्देश्य तुम हो सकती हो; किन्तु कारण नहीं। इसका कारण गम्भीर है और वह है तातार और राजपूत जाति के बीच की भावना। यह युद्ध मनुष्य और मनुष्य के बीच हो रहा है और यह तब तक जारी रहेगा; जब तक उसका शरीर नश्वर है और वह देवताओं की क्रीड़ा का साधन बना है।"

यह कह के वह गद्दे से उठे। उन्होंने पद्मिनी को भी उठाकर खड़ी कर दिया। पद्मिनी को अपनी भुजा से मुक्त करने के पहले उन्होंने उसे हृदय से लगाकर कहा,—"प्राणेश्वरी," भीमसिंह फिर पद्मिनी का चिबुक ऊपर उठाकर उसके सस्मित वदन और साश्रु नेत्रों की ओर देखकर बोले,—"आँसू रोक कर मुझे सान्न होने में सहायता दो। सूर्यास्त होने के पूर्व तक मुझे बहुत कुछ करना है। जिरह-बख़्तर पहनने में मुझे मदद दो।"

क्षण भर में पद्मिनी भय, आशङ्का और सन्देह से शून्य हो गयी। राजपूती उमङ्ग ने उनकी शोकाकुलता को मानो मार भगाया। वह हँस-हँस कर बातें करती हुई अपने पति को कवचादि पहनाने

में लग गईं। अन्त में भीमसिंह उनके सम्मुख पूर्ण राजपूत योद्धा के वेश में खड़े हो गये।

उनके बगल में उनके पूर्वजों की तलवार लटक रही थी। यह कृपाण न जाने कितने शत्रुओं को यमलोक भेज चुकी थी। उस तलवार की मूठ पर हाथ फेरते हुए भीमसिंह ने कहा—"प्राणप्रिये अपनी दासियों को बुलाओ और जाकर स्नान करो। मैं अपने योद्धाओं सहित राजपूत-स्त्रीत्व की रक्षा करूँगा।"

अस्त्रों की झंकार के साथ भीमसिंह शयनागार से बाहर निकले। पद्मिनी ने भय और गर्व के साथ अपने प्राणाधार को अग्नि-परीक्षा के लिये जाते देखा। उसे यह गर्व था कि ऐसा वीर पुरुष उसका पति है; किन्तु यह सोच कर वह भय से सिहर उठी, कि दूसरे ही क्षण न जाने क्या होने वाला है!

× × × ×

इधर तातार-शिविर में हलचल और क्रियाशीलता थी। प्रत्येक सैनिक अपने २ कर्त्तव्य पर तत्परतापूर्वक आरूढ़ था। आक्रमण की तय्यारियाँ हो चुकी थीं। भारत-विजयी सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ के सुदृढ़ दुर्ग पर फहराते हुए सूर्य-चिह्नित झण्डे की ओर रोषपूर्ण दृष्टि से देख रहा था। वह यही सोच रहा था, कि किसी प्रकार चित्तौड़ की किलेबन्दी में कहीं कोई कमज़ोरी मिल जाये, तो आक्रमण आरम्भ किया जाये; किन्तु बाप्पा रावल का चित्तौड़ अभेद्य था। पाँच सौ फीट ऊँची, तीन मील लम्बी, आध मील चौड़ी पहाड़ी पर स्थित यह गढ़ कोई सहज-

गम्य स्थान न था। अलाउद्दीन चिन्तित था। महीनों से उसकी विकट सेना इस विशाल दुर्ग के तोड़ने और उस पर अधिकार करने की सभी ज्ञात युक्तियाँ काम में ला चुकी थी। अलाउद्दीन चिन्तित भाव से अपने शिविर के आम खेमे में चेहलकदमी कर रहा था। अब वह बुखारा के बने कालीन की गद्देदार कुर्सी पर बैठकर अपने सरदारों की प्रतीक्षा कर रहा था। एक खादिम ने आकर बहूमूल्य पेचवान उसके सम्मुख रख दिया। उसने सुगन्धित तम्बाकू का दम लगाते हुए अपने सरदारों को आते देखा। सबने आकर उसे झुक-झुक कर ताज़ीम अदा की और एक अर्द्ध-चन्द्राकार मंडल बनाकर विस्तृत दरी पर बैठ गये। अलाउद्दीन का नाम ही लोगों को भयातुर करने के लिये पर्याप्त था, फिर उसकी उपस्थिति यदि सरदारों के लिये आतङ्क का कारण हो, तो उसमें आश्चर्य ही क्या है! क्षण भर चुप रहने के बाद अलाउद्दीन बोला—"मेरे सरदारो! इस घेरे से मैं बहुत तङ्ग आ गया हूँ। पद्मिनी के पाने की मेरी उम्मीदों पर पानी फिर गया है। अब आप लोगों की क्या राय है?"

सब के सब चुप रहे। सभी जानते थे, कि उनकी सलाह शाहंशाह के इरादों के विरुद्ध न होनी चाहिये, अन्यथा वह उसकी नज़रों से गिर जायेंगे।

अन्त में बादशाह के बुड्ढे वज़ीर अब्दुलअज़ीज़ ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"शाहंशाह सलामत, सभी जानते हैं कि सिपाही लड़ते-लड़ते थक भी जाते हैं और कभी-कभी

अपने पूरे हाथ भी दिखाते हैं। लेकिन जैसे भी हो, हमें तो राजपूतों का मुकाबिला करते हुए इस किले पर कब्ज़ा करना ही है। राजपूतों ने लड़ाई में हमारा पूरा मुकाबिला किया है, इसलिये अब लड़ाई में इनसे जीतने की उम्मीद छोड़कर कोई तद्बीर निकालनी पड़ेगी। यह काम अब्दुल्लाखाँ का है; अब्दुल्लखाँ, अब तुम्हीं कोई तरकीब बताओ।"

× × × ×

[२]

सम्राट् अलाउद्दीन के प्रधान सेनापति अब्दुल्लाखाँ ने वज़ीर अब्दुलअज़ीज़ की बातें सुनकर उसकी ओर ध्यान से देखा। सब सरदार समुत्सुक हो उठे। अब्दुल्लाखाँ अपनी वीरता और खरेपन के लिये समस्त तातार-दल में विख्यात था। उसने खाँसकर अपना गला साफ करते हुए कहा—"जहाँपनाह, चित्तौड़ को यह पैग़ाम भेज दें, कि अगर भीमसिंह हुज़ूर को पद्मिनी की सूरत भर देख लेने दें, तो चित्तौड़ का घेरा उठा लिया जायेगा। आप बग़ैर हथियार लिये सिर्फ दो-तीन साथियों के हमराह महल में जायें......।"

इस पर सब सरदारों ने अस्वीकृति प्रकाशित कर दी; पर सम्राट् अलाउद्दीन अपने सेनापति की बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगा। अब्दुल्लाखाँ ने सब को घुड़क कर शान्त कर दिया।

उसने कहा—"मेरी अर्ज़ है, कि हुज़ूर, निहत्थे होकर और सिर्फ दो-तीन हमराहियों को लेकर जायें। मैं इन राजपूतों की घुट्टी तक से वाकिफ़ हूँ। अगर चित्तौड़ का राना ज़बान दे देगा, कि आप

बेशरर रहेंगे, तो इसमें कोई फ़र्क़ न आयेगा। जब आप लौटेंगे, मैं अपने कुछ चुने हुए सरदारों के साथ पोशीदा तौर से रामपोल या निचले दर्वाजे के पास छुपा रहूँगा और फ़ौरन दर्वाजे पर धावा बोल कर अपने पिछले सिपाहियों की कुमक आने तक उसे रोक रखूँगा और इस तरह हम आसानी से गढ़ के अन्दर दाखिल हो जायेंगे। अब जहाँपनाह फ़र्मायें, यह तरकीब कैसी रहेगी?"

इसके बाद सरदारों ने इस योजना का समर्थन और खण्डन आरम्भ किया। किन्तु सम्राट् ने इस विवाद में भाग न लिया। वह पूर्ववत् विचार-निमग्न रहा। उसने देख लिया, कि योजना में त्रुटि कहाँ है। फिर भी, सम्राट ने विचार किया कि यह योजना उसकी निजी योजना का आधार बन सकती है और उसके आधार पर उसका एक नया रूप बन सकता है।

× × ×

सम्राट् की बाईं ओर ठिगने कद का कुबड़ा-हाफ़िज बैठा था। वह सम्राट् का प्रमुख खज़ाँची था और शाहंशाह पर प्रभाव रखने के साथ-साथ और लोगों के लिये आतंक का कारण बना हुआ था। वह प्रधान सेनापति का सम्राट् पर प्रभाव पड़ते देख कर जल उठा। अब मौका पाकर वह बादशाह की ओर झुका और उनके कान में कुछ फुसफुसा कर कहा।

हाफ़िज़ की बात सुन कर सम्राट कुछ मुस्कराया। उसकी योजना से बादशाह क्रुद्ध नहीं हुआ। यह वह समय था, जब सभी जाति के लोग युद्ध करने और शारीरिक शौर्य प्रदर्शित करने में

पटु पाये जाते थे;किन्तु किसी उद्देश्य-सिद्धि के लिये गुप्त कार्यवाही करने में बहुत लोग कुशल न होते थे। सफलता मिल जाने पर निम्न श्रेणी के कार्यों से संयुक्त योजनाओं की भी प्रशंसा हो जाती थी।

जब ठिंगने-हाफ़िज़ ने अपनी बात समाप्त की; तब वह अपनी जगह फिर आराम से बैठ कर इस प्रकार मुस्कराया, जिससे स्पष्ट झलक रहा था, कि उसकी योजना स्वीकार कर ली गई! सम्राट् ने अब अपना हाथ उठाया और उपस्थित मण्डली में स्तब्धता छा गई। उसने कहा—"मेरे सरदारो! बहस खत्म करो और नज़दीक आकर सुनो।" और फिर धीमी आवाज़ में बोला—'अब्दुल्लाखाँ की योजना अच्छी है; लेकिन उसमें कुछ बुनियादी खामियाँ रह गई हैं। वह रामपोल तक पोशीदा तौर पर पहुँच नहीं सकता।" यह कह कर सम्राट ने प्रधान सेनापति की ओर देखा और फिर बोला—"लेकिन अगर अब्दुल्लाखाँ अपनी तज़वीज़ पेश न करता, तो हाफ़िज़ साहब और तदबीर सुझाने की तकलीफ़ गवारा न करते। हाफिज़ साहब की तज़वीज़ यह है कि मैं अब्दुल्लाखाँ की बन्दिश के मुताबिक पद्मिनी को देखने का इरादा ज़ाहिर करूँ और घेरा हटाने की बात उसके लिये चारे के रूप में रखूँ। अगर महाराणा इस बात को क़बूल करलें, तो मैं चित्तौड़ जाऊँ और पद्मिनी को देखने की इच्छा पूरी कर जब लौटूँ, तो भीमसिंह को भी शाही खेमे में मदऊ करूँ। एक बार यहाँ आजाने पर उन्हें गिरफ्तार करके चित्तौड़ को यह पैग़ाम भेजा जाय, कि अगर

पद्मिनी मेरे पास न आ जायगी तो भीमसिंह की जान ले ली जायेगी।"

× × ×

"वल्लाह !" अब्दुल्लाखाँ ने प्रसन्नता से उछलते हुए कहा—"तजवीज़ अच्छी है; मीर मुन्शी को बुला कर हुज़ूर पैग़ाम लिखने की इज़ाज़त दें। मैं खुद हुज़ूर के हमराह चलूँगा। वज़ीर साहब भी तशरीफ़ ले चलेंगे। सिर्फ चन्द अक्लमन्द सरदार जहांपनाह के साथ चलेंगे।"

उसने अब्दुल-अज़ीज़ की ओर देखा। वज़ीर ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। तुर्क और तातारों में पटती न थी। वज़ीर ने तजवीज़ पेश करने के लिये अब्दुल्लाखाँ का नाम इसीलिये लिया था, जिससे बाद में वह उसमें त्रुटियाँ दिखा कर उसे बेवकूफ़ बना सके। किन्तु वहाँ तो ठिगने-हाफ़िज़ ने पासा ही पलट दिया था। उसने हाफ़िज़ की ओर भी आग्नेय नेत्रों से देखा; पर हाफिज ने जबाब में वैसी ही खूनी आँखें दिखाकर उसे शान्त कर दिया।

मीर मुन्शी बुलाया गया और बड़े तर्क-वितर्क के बाद अन्ततः सन्देश लिखाया गया। सन्देश पर शाही मुहर लगी और उसे वाहक के हवाले कर भीमसिंह के हाथों में देने का आदेश किया गया। जब सन्देश-वाहक शिविर से रवाना हो गया, तो सम्राट् और सरदार इकट्ठे होकर उसको महल की ओर जाते देखने लगे।

× × ×

चित्तौड़ की पटरानी के चाचा गोरा का द्वादशवर्षीय बालक

बादल पादलपोल के दर्वाजे का रक्षक नियुक्त हुआ था। उसने सन्देश-वाहक को दर्वाजे की ओर बढ़ते देखा। बादल ने अपने घोड़े को एड़ लगाई और सन्देश-वाहक तातार युवक के पास पलक मारते जा पहुँचा। तातार युवक ने यह देखा, तो घोड़े से उतरकर अपने आगे बढ़ने का उद्देश्य बादल को बतलाया।

"अच्छा, दिल्ली का साँप कोई नई चाल चल रहा है!" बादल ने कहा।

बादल तातार युवक को आगे जाने देने या रोकने के सम्बन्ध में अभी विचार कर ही रहा था, कि उसी समय महाराणा भीमसिंह और गोरा वहाँ पहुँच गये। उनके साथ कुछ योद्धाओं का दल भी था। भीमसिंह ने सन्देश-वाहक के आने की बात सुनी, तो द्वारपाल से उसे फाटक खोल कर अन्दर आने देने का आदेश किया।

"हुज़ूर!" युवक ने नज़र झुका कर कहा—"शाहँशाह ने यह पैग़ाम खुद हुज़ूर के ही हाथों में देने का हुक्म दिया है।"

यह कहकर सन्देश-वाहक ने अपने कमरबन्द के अन्दर से एक लिफाफा निकाल कर महाराणा भीमसिंह के हाथों में अर्पित किया। महाराणा ने मुहर तोड़ कर पत्र खोला। पत्र पढ़ते-पढ़ते उनका चेहरा तमतमा उठा और भौंहें तन गईं।

गोरा और मेरे योद्धाओ! जरा दिल्ली के इस चालबाज़ की धृष्टता तो देखो। वह कहता है, कि अगर क्षणभर के लिये महारानी पद्मिनी का मुखमण्डल उसे दिखा दिया जाये, तो वह ४८ घण्टे के अन्दर घेरा उठा सकता है। वह राजपूतों पर विश्वास कर

यहाँ आने पर तैयार है। बोलो, तुम सबकी क्या राय है।"

इस समय तक कोई सौ योद्धा भीमसिंह के सम्मुख आ उपस्थित हुए थे।

जब अलाउद्दीन का सन्देश सब राजपूत योद्धाओं ने सुन लिया, तो उनमें एक प्रकार का क्रोधावेश छा गया। अलाउद्दीन शाहँशाह सही; पर है तो वह मनुष्य ही। उसकी यह धृष्टता? क्या उसे मालूम नहीं, कि राजपूत महिला का सौंदर्य वही अजनबी देख सकता है, जो मृत्यु का मुख चूमने को तैयार हो? कुछ राजपूत योद्धा इतने उत्तेजित हुए कि उन्होंने तत्काल तातार-दल पर आक्रमण कर देने की सलाह दे डाली। कुछ ने सन्देश-वाहक की अप्रतिष्ठा कर वापस भेजने को कहा। कुछ ने मुँह तोड़ जवाब देने की राय दी और कुछ ने सावधानी से काम लेने का परामर्श दिया। छोटे से बालक बादल ने राजपूतों के क्रोधावेश को बढ़ते देखा, तो उसने अपने चाचा गोरा को एक ओर लेजाकर धीरे से कहा—"राणाजी को अपने साथ महल वापस ले जाने को राज़ी कीजिये, चाचाजी! इस प्रश्न पर महल में चलकर शान्तिपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।"

गोरा ने महाराणा भीमसिंह की ओर फिर कर कहा—"अभी कोई निश्चय न कीजिये। इस सन्देश पर ध्यानपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। चलिये, हम लोग महल लौट चलें और वहीं विचार कर जवाब दिया जाये। सन्देशवाहक यहीं ठहर कर उत्तर की प्रतीक्षा करे।"

बड़ी कठिनाई से महाराणा अपने संबन्धी का परामर्श स्वीकार कर सके। उन्होंने मुश्किल से अपना क्षोभ शान्त किया। फिर भी वह अनिच्छापूर्वक ही महल की ओर लौटे। तातार के धृष्ठतापूर्ण सन्देश पर वह अब भी अपने मन से क्षोभातिरेक पूर्णतः दूर न कर सके।

महाराणा भीमसिंह के साथ गोरा और बादल तथा अन्य प्रमुख सरदार महल की ओर लौटे। महल में पहुँचते ही बादल शीघ्रतापूर्वक पद्मिनी के पास अन्तःपुर में जा पहुँचा और हाँफते-हाँफते जल्द जल्द सब समाचार महारानी को सुना दिया। पद्मिनी बादल के साथ महल के मर्दाने विभाग से मिले हुए कक्ष में पहुँची, जहाँ बैठे हुए भीमसिंह गोरा से सक्रोध वार्तालाप कर रहे थे। पद्मिनी को आती देख वह तत्क्षण खड़े हो गये।

"क्या तुम्हारे भाई बादल ने इस बदनामी-भरे प्रस्ताव की चर्चा तुमसे की है?" महाराणा ने कुछ क्रुद्ध भाव से पूछा।

× × ×

पद्मिनी ने अपने सौंदर्य-कमल को विकसित करते हुए अपने मृणाल बाहू को भीमसिंह के कन्धे पर रख कर कहा—"क्रोध न कीजिये प्राणनाथ! दिल्लीपति ने जो माँग की है, वह बहुत सामान्य बात है, शर्त यह है, कि वह अपने वचन को पूरा कर दे।"

"सामान्य बात है?" भीमसिंह भ्रू-विक्षेपपूर्वक पद्मिनी की भुजा अपने कन्धे से हटाते हुए बोले—"तुम यह क्या कहती हो? क्या तुम पागल हो गई हो?"

गोरा कुछ दूर पर बैठा हुआ अपनी दाढ़ी पर हाथ फेर रहा था। वह भीमसिंह का क्रोध शान्त करने में असफल रहा; किन्तु अब उसने विचार किया, कि स्त्री की बुद्धि शायद भीमसिंह का तातार-शिविर पर तत्काल आक्रमण कर देने का विचार बदल दे।

"क्या तुम कुछ परामर्श देना चाहती हो, बेटी ?" गोरा ने पद्मिनी की ओर देखकर धीमे स्वर में पूछा।

"हाँ, चाचाजी" उसने कुछ मुस्करा कर भीमसिंह की ओर से गोरा की ओर दृष्टि फेरते हुए कहा।

"पद्मिनी, तुम्हारी रहस्यपूर्ण बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। अच्छा, आओ—साफ़ साफ़ कहो, कि क्या कहना चाहती हो ?"

"बिल्कुल सीधी-सादी बातें हैं; मेरे स्वामी" पद्‌मिनी ने हास्य के साथ कहा—"योजना चतुरतापूर्ण बननी चाहिये; कपटी के साथ छलपूर्ण व्यवहार करने में कोई हर्ज़ नहीं। अलाउद्दीन खिलजी, चालाक आदमी है। उसका इरादा क्या है, यह हम नहीं जानते, किन्तु उसकी चालाकी का मुकाबिला चालाकी से ही करना चाहिये। क्रोध करने से काम नहीं बन सकता, प्राणपति !"

कुछ ही शब्दों में पद्‌मिनी ने बादल के साथ बातें करते हुए अपनी योजना सुना दी। यह योजना ऐसी थी, कि उससे सम्राट् के अनुरोध की रक्षा भी हो जाती थी और राजपूतों की प्रतिष्ठा भी स्थिर रहती थी। गोरा ने देखा, कि पद्‌मिनी की यह योजना सुनकर भीमसिंह का क्रोध पानी हो गया और उनकी आँखों में आह्लाद की ज्योति छा गई। गोरा ने अब ठण्डी साँस ली। उस

सीधी-सादी योजना के वर्णन के साथ पद्मिनी के मृदु हास्य ने महाराणा का ध्यान आकर्षित कर लिया और गोरा को प्रतीत हुआ, कि कम से कम कुछ समय के लिये तो त्वरापूर्ण कार्यवाही का भय जाता रहा।

"अच्छी बात है" वृद्ध भीमसिंह ने बच्चों की भाँति सरल बन कर कहा—"एक स्त्री की योजना से ही दिल्लीपति तातार मूर्ख बनाया जा सकता है।" फिर उन्होंने बादल की ओर मुड़ कर कहा—"तुम पादलपोल को जाओ और तातार संदेश-वाहक से कह दो, कि वह हमारा जवाब ले जाने के लिये तैयार रहे।"

बादल महल से पादलपोल की ओर गया। थोड़ी देर बाद भीमसिंह और गोरा भी वहाँ से खुशी-खुशी पादलपोल की ओर चले। वहाँ पहुँचने पर तातार-संदेशवाहक भीमसिंह के सम्मुख उपस्थित किया गया। गोरा ने वहाँ स्थित अन्य योद्धाओं को एक ओर ले जाकर पद्मिनी का प्रस्ताव सुनाया। राजदूत प्रकट-तया उसे सुनकर प्रसन्न हुआ।

"जाओ और अपने मालिक से कहो" भीमसिंह ने संदेश-वाहक से कहा—"महारानी पद्मिनी मध्याह्नकाल में उन्हें दर्शन दे सकेंगी। दिल्लीपति से कहो, कि डरें नहीं। उनकी कोई हानि न होगी। यह भीमसिंह का वचन है; चित्तौड़ के राजपूत-स्वामी का वचन है!"

[३]

तातार-सम्राट् और उनके सरदार बातचीत करते हुए अभी

तक सन्देश-वाहक के लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अन्त में पादलपोल से बाहर निकल कर आता हुआ तातार सन्देश-वाहक उन्हें दिखाई दिया। उनके विचार विरोधी भावनाओं में तरंगित होने लगे। सन्देश-वाहक तेज़ी से घोड़ा दौड़ा कर रेतीले मैदान को पार करता हुआ निकट आ पहुँचा।

पास पहुँच कर सन्देश-वाहक घोड़े से उतर पड़ा और सम्राट् के पास पहुँचा। सभी के कान भीमसिंह का जवाब सुनने को उत्सुक थे। सन्देश-वाहक ने भीमसिंह का उत्तर सुना दिया। सभी श्रोता उसे सुन कर चुप हो रहे। अलाउद्दीन कठोर तथा गम्भीर आदमी था। वह अपने मनोभाव छुपा न सकता था। विशेषकर यह प्रसंग तो उसकी अभिलाषा की पूर्ति का था—उस अद्वितीया सुन्दरी के दर्शन का था, जिसके लिये वह दिल्ली से चित्तौड़ पर चढ़ आया था।

सन्देश-वाहक को विदा कर खिलजी-सम्राट् ने कहा—'अच्छा हुआ, आखिर हिन्दुस्तान का शाहंशाह मुल्क की बेहतरीन खूबसूरती देख कर ही रहेगा! बिस्मिल्लाह!' उसने अपनी सेना पर नज़र डालते हुए कहा—"राजपूत कभी तातारों से बाज़ी नहीं ले जा सकता। राजपूत की बातों पर इत्मीनान कर आज मैं अपनी जान खतरे में डालूँगा—मैं बगैर हथियार या हमराही के चित्तौड़ के महल में दाखिल हूँगा।"

"नहीं हुजूर" अब्दुल्लाखाँ ने सशङ्कित नेत्रों से सम्राट् की ओर देखते हुए कहा—"पीछे यह कहने को न रह जाए, कि हुजूर का

सिपहसालार भी साथ न था।"

इस प्रकार सभी सरदारों ने बारी-बारी से सम्राट् के साथ जाने का दावा पेश किया। सिर्फ कुबड़ा-हाफ़िज़ चुप रहा। वह पीछे खड़ा मानो सब को भर्त्सना की दृष्टि से देख रहा था और सब के विश्वास-पात्रता के दावे को घोर घृणा और तिरस्कार के साथ देखता हुआ मन ही मन कुढ़ रहा था।

सम्राट् ने अपने चारों ओर खड़े सरदारों पर नज़र डाली। सब उत्सुक होकर उसकी ओर देख रहे थे। उसने हाथ उठा कर कहा—"मेरे सरदारो! मैं आप सब का शुक्रिया अदा करता हूँ; लेकिन मेरे साथ सब नहीं जा सकते—मैं सिर्फ अपने वज़ीर और अब्दुल्लाखाँ को साथ लूँगा।"

एक अप्रसन्नता और अस्वीकृति सूचक फुस-फुसाहट के साथ किसी व्यक्ति ने अपनी निराशाजन्य भावना प्रकाशित की। परन्तु सम्राट् ने उसकी ओर ध्यान न देकर कहा—"हाँ, इस बारे में हाफ़िज़ का इरादा बिना जाने मैं कुछ न करूँगा।"

सब की दृष्टि कुबड़े की ओर केन्द्रित हो गई। हाफ़िज़ ने व्यंग-हास्य से वातावरण गुँजाते हुए शाहंशाह की ओर सिर झुका कर शिष्टाचार-प्रदर्शनपूर्वक कहा—"नहीं हुजूर, हाफ़िज़ खेमे में ही रहना चाहेगा। खूबसूरती के साथ बदसूरती को मिलाना अच्छी बात न होगी।"

अलाउद्दीन ने कुबड़े की बात पर विचार करने के बाद कहा—'हाफ़िज़ हमेशा ठीक फैसला किया करते हैं। खूबसूरती पर बद-

सूरतों का साया डालना अक्लमन्दी का शेवा नहीं !"

कुबड़े-हाफ़िज़ के मुँह फेरते ही सब सरदार खिलखिला कर हँस पड़े। कुबड़ा दाँत पीसता हुआ चला गया। अलाउद्दीन ने उसे जाते देखा और उसकी कुरूपता से उत्पन्न अनोखे हास्य का आनन्द लेता हुआ बोला—"अज़ीब आदमी है; लेकिन इसकी टेढी खोपड़ी में अक्ल का खज़ाना भरा हुआ है।"

इसके बाद सम्राट् ने कुबड़े की बात अपने दिमाग़ से निकाल दी और आगे बढ़ते हुए अब्दुल्लाखाँ से कहा—"मैं ठीक वक्त पर चित्तौड़ पहुँच जाऊँगा। इसी के मुताबिक इन्तिज़ाम हो जाना चाहिये।"

दम के दम में सम्राट् के चित्तौड़गढ़ जाने का समाचार सारे तातारशिविर में जंगल की आग की भाँति फैल गया। हमले के लिये कोई हुक्म न मिला था; इसलिये सिपाहियों के दल खेमों के बाहर गपशप करने के लिये जमा हो रहे थे। लोग तरह-तरह की सम्भावनाओं के अनुमान लगा रहे थे। एक प्रकार की उत्सुकता-मिश्रित उमंग से लोग बातें कर रहे थे। ऐसे ही उत्सुक सैनिकों का एक दल शाही खेमे के पास पहुँच गया। तीन सजे-सजाए शाही घोड़े खेमे के बाहर प्रतीक्षा में खड़े किये गए थे और वह अपनी लगाम चबा-चबा के टांगों से भूमि पर प्रहार कर रहे थे।

जब मध्याह्न होने का समय निकट आ गया और धूप से पार्श्ववर्त्ति मरुभूमि परितप्त हो उठी, तो सम्राट् अपने वज़ीर तथा अब्दुल्लाखाँ को साथ ले बाहर आए। बाहर जय-जयकार की

ध्वनि से उनकी शुभ कामना की गई। बादशाह ने अपने सैनिकों की सलामी का जवाब मुस्करा कर दिया और फिर घोड़े पर सवारी की। घोड़ा भी जैसे अपने सवार का महत्त्व समझता था और बड़ी शान से पाँव आगे बढ़ाने को उद्ग्रीव हो रहा था। दोनों सरदारों ने भी अपने-अपने घोड़ों पर सवारी की और सम्राट् के पीछे-पीछे घोड़े लगाने को उद्यत हो गए। जब पूरी तैयारी हो गई, तो सम्राट् तुमुल हर्षध्वनि करती हुई भीड़ के बीच से आगे बढ़े।

[४]

उधर चित्तौड़गढ़ के योद्धा इन सवारों को आगे बढ़ते देख रहे थे। पद्मपोल पर स्वयं महाराणा भीमसिंह उपस्थित थे। उनके साथ उनके कुछ चुने हुए सरदार भी थे। गढ़ के ऊँचे बुर्जों पर बैठे कुछ चतुर राजपूत यह देख रहे थे, कि इन आगत सवारों के पीछे-पीछे कोई और कार्यवाही करने वाले दग़ाबाज़ सिपाही तो नहीं आ रहे हैं।

जब तीनों सवार किले के पास आ पहुँचे, तो उसका विशाल फाटक खोला गया और महाराणा भीमसिंह आगे बढ़े। बादशाह ने अपना घोड़ा रोका और दोनों की निगाहें चार हुईं। दोनों ही की आँखों में गर्व था। दोनों ही की दृढ़ेच्छा और सङ्घर्ष की भावना इतनी प्रबलता को पहले ही पहुँच चुकी थी, कि आज एकाएक उनमें बातचीत न हो सकी। दोनों प्रबल शत्रु एक दूसरे को अनम्र लोचन से देखते रह गए। अन्त में भीमसिंह के मन में बादशाही

की बहादुरी की प्रशंसा के भाव जाग्रत हुए और उसके सैनिक कौशल के प्रति उनके हृदय में आदर-भाव भी। उधर तातार-सम्राट् ने भीमसिंह को सशरीर शौर्य के रूप में देखा। भीमसिंह ने अपने कठोर स्वर में दृष्टि को ज़रा भी नीचे गिराये बिना कहा—"दिल्लीपति, चित्तौड़ आपका स्वागत करता है।"

बादशाह ने देखा राजपूत योद्धाओं की कतार सामने खड़ी थी। उसे ऐसा मालूम हुआ, कि भीमसिंह का स्वागत-वाक्य अनादर का हल्का रंग लिये हुए है। अब्दुल्लाखाँ का हाथ बरबस उसकी बगल में चला गया, पर वहाँ था क्या? वह निहत्था था। कमर में केवल एक जड़ाऊ भुजाली थी। अलाउद्दीन ऐसे व्यवहार का, ऐसे विचार-स्वातन्त्र्य का अभ्यस्त न था। अब तक उसे जो शत्रु मिलते रहे हैं, वह नम्रता की मूर्ति बन कर गिड़गिड़ाया ही करते थे। चित्तौड़ाधिपति का यह उपेक्षापूर्ण स्वागत उसे अच्छा न लगा। फिर भी, वह उसे राजपूतों के सैनिक गुण की विशेषता समझ के चुप हो रहा। वह दो विशालकाय दढ़ियल राजपूत सूरमाओं के बीच से होकर उनके साथ घोड़े को आगे बढ़ा ले चला। शस्त्रास्त्र से सज्जित दोनों राजपूत तातारपति की प्रत्येक भाव-भंगी को सूक्ष्माध्ययन की दृष्टि से देख रहे थे। अन्त में मुख्य द्वार के निकट पहुँच कर सम्राट् घोड़े से उतरे और भीमसिंह उनके निकट पहुँचे।

"अगर दिल्लीपति साथ पधारें तो मैं दर्शन-कक्ष में लिवा ले चलूँ।" महाराणा भीमसिंह ने कहा।

बादशाह का मुँह लाल हो गया; पर वह कोई जबाब न दे सके। महाराणा ने अब अब्दुल्लाखाँ को सम्बोधन किया। वह उसे अच्छी तरह जानते थे, क्योंकि युद्ध में दो बार उसे खदेड़ चुके थे। "आज तो सुलह और शान्ति का दिन है, फिर डरने की क्या आवश्यकता है?" उन्होंने कहा।

× × ×

इन शब्दों में व्यङ्ग और घृणा की पुट थी। अब्दुल्लाखाँ अपने स्वामी के इशारे पर इस बात का गर्म जबाब देता-देता रुक गया। इधर गोरा और बादल भी आ पहुँचे। बादशाह ने देखा दरवाजों की रक्षा के लिये राजपूत सैनिक तैनात थे। और तीनों मेहमानों के घोड़ों को सम्भालने के लिये भी आदमी तैनात कर दिये गए थे। सम्राट् ने देखा कि राजपूत व्यवहार में थोड़े कठोर ज़रूर हैं; पर वह सब हैं सच्चे वीर और वह अपनी बात का मूल्य समझते और रखते हैं।

अब ऊपर की चढ़ाई शुरू होती थी। सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते बूढ़ा वज़ीर अब्दुलअज़ीज़ कुछ थक कर हाँफ उठा। महाराणा की दृष्टि उस पर पड़ी और उसकी बुजुर्गी का ख्याल रखते हुए उन्होंने ज़रा रुक कर चढ़ने का इशारा किया। किन्तु वज़ीर ने बिना रुके ही चढ़ाई जारी रखी।

केवल कुछ ही शब्द बादशाह और उसके सिपहसालार ने। उन्होंने चारों ओर नज़र दौड़ाकर देखा, कि यदि बाहरी आक्रमण हो, तो राजपूतों ने भीतर से पूरी तैयारी कर रखी है।

उन्होंने इस गढ़ को पूर्णतः अभेद्य और दुर्जय रूप में देखा।

× × × ×

बादशाह और सिपहसालार दोनों ही के दिलों पर यह बात जम गई, कि इस दुर्ग का जीतना उतना आसान नहीं है, जितना उन्होंने समझ रखा था। उसकी बनावट ही ऐसी अनोखी थी, कि बाहरी आक्रमणकारी थोड़े ही प्रयास से पीछे हटाकर परास्त किया जा सकता था। रामपोल का मुख्य द्वार पार कर उन्होंने देखा, कि ऊपर की चढ़ाई और भी दुर्गम है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते सभी लोग क्लान्त हो चुके थे; इसलिये थोड़ी देर के लिये रुककर तब अगली चढ़ाई शुरू करने का निश्चय किया गया। बादशाह ने पीछे फिरकर नीचे का दृश्य देखा, तो चकित हो गया। उस ऊँची जगह से तातार-शिविर तुच्छ झोपड़ियों की भाँति दिखाई देता था। दोपहर की धूप में रेतीले मैदान के पीछे सुदूर स्थित जंगल धूमिल-दृश्य उपस्थित कर रहे थे। गढ़ के ठीक नीचे सावधान पहरेदार अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। मन्दिरों से घण्टों की ध्वनि आ रही थी। मन्त्रोच्चार की ध्वनि भी सुनाई दे रही थी और स्त्रियाँ पूजा का उपकरण लिये उनमें प्रवेश कर रही थीं। मन्दिरों पर बैठे हुए कबूतर बड़ी शान्ति से गुटुरगूं की आवाज़ कर रहे थे। युद्ध के दिनों में इस प्रकार का शान्तिपूर्ण वातावरण स्वर्ग के सदृश था। यद्यपि तातार-सम्राट् के लिये अपने मज़हब के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बियों की पूजा-अर्चना सब व्यर्थ जँचती थी; किन्तु आज यह दृश्य उसे भी शान्तिदायक प्रतीत हुआ।

उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, कि विजय की अभिलाषा ऐसी अन्धी होती है, कि वह ऐसी शान्ति भंग करने में कुछ भी आगा-पीछा नहीं देखती। किन्तु क्षण ही भर में उसका यह विचार परिवर्तित हो गया। वह सोचने लगा, कि मैं इस दुर्ग पर अधिकार कर इसका और इसके पार्श्ववर्ति सभी मनोहर दृश्यों और वस्तुओं का स्वामी बन सकता हूँ। इस पर विजय प्राप्त कर यहाँ की शान्ति तथा सौन्दर्य का मैं स्वामी बन सकता हूँ।

भीमसिंह के आदेश पर वह ऊपर पहुँचने के बाद उच्च-स्तम्भों के विशाल कक्ष में प्रविष्ट हुआ। वहाँ की ठण्डक और शान्ति प्रशंसनीय थी। चारों ओर सशस्त्र राजपूत सरदार चुपचाप खड़े थे।

"क्या चित्तौड़ के मालिक तीन निहत्थों से इतना डरते हैं?" बादशाह ने व्यंग-भाव से कहा।

भीमसिंह ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया—"नहीं; राजपूत न निहत्थों से डरते हैं, न सशस्त्रों से; यह तो चित्तौड़ के सैनिकों द्वारा आपका स्वागतमात्र हो रहा है।"

"काफी हो चुका," बादशाह ने कहा—"मैं चित्तौड़ की फौज देखने नहीं आया हूँ; मैं तो हुस्न की देवी का दीदार हासिल करने आया हूँ।"

"शाहंशाह ने ठीक फर्माया" भीमसिंह ने मुँह बनाकर कहा—"पराजय की विभीषिका के आतङ्क से सौन्दर्य-दर्शन कुछ-न-कुछ फीका हो जाता है। इस रास्ते पधारें।"

सम्राट् के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही भीमसिंह उन्हें उस दिशा में ले गये, जहाँ एक दीवार का मध्यवर्त्ति भाग पर्दे से ढँका हुआ था।

× × × ×

सम्राट् अपने दोनों साथियों सहित उत्सुक भाव से आगे बढ़ा। भीमसिंह के पास खड़ा होकर उसने कक्ष के चारों ओर दृष्टि दौड़ाई।

वह विशाल कक्ष एक प्रकार से खाली था। केवल वीर सशस्त्र राजपूत वहाँ खड़े थे। सूर्य की किरणें झरोखे से पर्दे पर पड़ रही थीं। जिस जगह पर्दा टँगा था; उसके सामने खुला दर्वाजा था। उस पर भी उस समय पर्दा पड़ा था, जिससे कोई न तो अन्दर देख सकता था, न सन्देह कर सकता था।

भीमसिंह के मार्मिक आह्लाद को ताड़ते हुए तातार बादशाह ने कहा,—"वल्लाह, मुझे यह चालबाज़ी पसन्द नहीं।"

"तो शायद दिल्लीपति यह पसन्द करेंगे।" कह कर भीमसिंह ने आगे कदम बढ़ाया और पर्दे को खींचकर एक ओर कर दिया।

अलाउद्दीन आश्चर्यपूर्वक कई कदम पीछे हट गया। पर्दे के पीछे मानवाकार शीशा था और उस शीशे में किसी रमणी की मनोहारिणी प्रतिकृति थी। बादशाह को अपने आप विश्वास हो गया, कि यही पद्मिनी का अद्वितीय सौन्दर्य है; किन्तु पद्मिनी का शरीर कहाँ है—वह तो उसकी प्रतिच्छाया मात्र है। वह आश्चर्य-चकित होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाने लगा। उपस्थित राजपूतों में दबी हुई आमोद-भावना

छा गई। इसके बाद बादशाह की नज़र पर्दे पर पड़ी और उसे मालूम हुआ कि वह प्रपञ्च का शिकार बनाया गया है। पद्मिनी स्वयं तो विरुद्ध दिशा में छिपी हुई थी और उसे क्षण भर के लिए उसकी परछाई मात्र दिखा दी गई है। क्षण भर के लिये तातार ऐसा निराश हुआ, कि उसका जी पर्दा फाड़कर पद्मिनी को ज़बर्दस्ती पकड़कर भाग जाने को हुआ; किन्तु उपस्थित परिस्थिति के आगे यह विचार क्षण भर भी टिक न सका। वह अब समझा कि उस विशाल कक्ष में सशस्त्र राजपूत क्यों उपस्थित थे।

× × × ×

अब्दुल्लाखाँ इस छलपूर्ण कृत्य से दाँत पीसने लगा। वज़ीर भी अपना क्रोधातिरेक छिपाने में सफल न हुआ, बादशाह को अब ऐसा मालूम हुआ कि उसे बेवकूफ बनाया गया है; फिर भी, वह भी अन्दर ही अन्दर जलकर रह गया। मन-ही-मन उसने बदला लेने की भावना दृढ़ कर ली। आज तक उसके साथ ऐसी धृष्टता का व्यवहार कर कोई बच न सका था। इस शरारत-भरी ठिठोली का मज़ा वह भीमसिंह को चखाएगा। हिन्दुस्थान का बादशाह क्या इतनी बड़ी अप्रतिष्ठा की बात क्षमा कर सकता है।

भीमसिंह ने उसके चेहरे की ओर देखा। वह समझ गया कि दिल्लीपति ने कितनी कठिनाई के साथ अपने विचारों को दबा दिया है। कक्ष में उपस्थित सभी राजपूत सन्न रह गए। मानो उन्होंने बादशाह के हृदय में प्रज्ज्वलित अग्नि शिखा देख ली।

"इस इनायत के लिये मैं आपका शुक्रिया अदा करता हूँ

भीमसिंह," सम्राट् ने अपने मनोभाव पर पूरा नियन्त्रण रखते हुए कहा—"और मुजस्सिम खूबसूरती महारानी पद्मिनी, आपकी खूबसूरती के अक्स ने मेरी ख़ाहिश और भी बढ़ा दी है। दिल्लीपति आपका अक्स देखकर सकून नहीं पा सकता; वह आपको अपनी बाहों में......"

पलक मारते ही भीमसिंह ने तलवार म्यान से निकाल ली और क्षण भर में एक दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता; किन्तु गोरा ने बिजली की-सी चपल-गति से भीमसिंह और बादशाह के बीच में अपना शरीर खड़ा कर दिया और भीमसिंह की कलाई पकड़ कर बोले,—महाराणा यह अपनी प्रतिष्ठा का सवाल है। राजपूत ने वचन दे रखा है, कि अलाउद्दीन सुरक्षित लौटेगा।"

वीरतायुक्त हुङ्कार से निकली हुई भीमसिंह की तलवार यवन-राज पर चलाई जाकर पार्श्ववर्त्ति प्रस्तर-खण्ड पर टकराई और उससे एक स्फुलिंग निकल कर राजपूत शौर्य का परिचय दे गया।

"अच्छा" महाराणा ने अलाउद्दीन की ओर मुँह करके कहा—"दिल्लीपति, अब आप यहाँ से पधार जायें, अन्यथा भीमसिंह का क्रोध उनके वचन का भंग करा देगा।"

अलाउद्दीन ने भर्त्सनापूर्ण मुस्कराहट के साथ भीमसिंह की ओर देखा। वह जानता था, कि वीर राजपूत के उमड़े क्रोध के सम्मुख मुँह से एक शब्द निकालना मृत्यु का आवाहन करने के सदृश है। वह डरा नहीं; किन्तु आज न जाने कहाँ से उसके

गर्व को आवृत करने के लिये उसका मस्तिष्क शीतल और तर्क-युक्त हो उठा था। उसने कुछ भी कहने के बदले अपना कन्धा मोड़ा और अपने साथियों से चलने का इशारा करके विशाल कक्ष से निकल कर वह सीढ़ियों से नीचे उतरने लगा। क्रोध और ग्लानि से अपने को कोसते हुए यवनत्रय पदमपोल की ओर रवाना हुए। फाटक पर पहुँच कर पहले शाहंशाह अपने घोड़े पर सवार हुआ। भीमसिंह और उनका दल भी यवनों के पीछे पीछे फाटक तक आया था। भीमसिंह ने इशारे से फाटक खुलवाया। सम्राट् ने घोड़े पर सवार होने के बाद कहा—"चित्तौर-पति, तातार कौम कोई भी ऐसी बात मंजूर नहीं करती, जिसका बदला वह न दे सके। मैंने आपकी मेहमानदारी कबूल की है, अब क्या बदले में आप मेरी मेहमानदारी मंजूर करेंगे?"

भीमसिंह कुछ हिचकिचाये। शाहंशाह के पहले व्यंग-बाण से अभी तक उनका क्रोध पूर्णतः शान्त नहीं हो पाया था और उस समय वह अपना वचन भंग किये बिना—यवनराज को क्षति पहुँचाये बिना वहाँ से विदा कर देना ही अपना ध्येय समझ रहे थे।

"क्या आप मुझ से डर गये?" अलाउद्दीन ने व्यंगपूर्वक पूछा।

इस प्रश्न से भीमसिंह का क्रोध फिर भभक उठा। कोई और अवसर होता, तो भीमसिंह इस आमन्त्रण पर शान्तिपूर्वक विचार कर अस्वीकार कर देते। पर इस ताव के समय वे ऐसा

न कर सके और बिना हिचकिचाहट के बोल उठे—"डर गया! नहीं दिल्लीपति, भीमसिंह किसी मनुष्य से नहीं डरा करता! मैं आऊँगा!"

राजपूतों को भीमसिंह की यह स्वीकृति न भायी; उन्होंने अपनी अस्वीकृति प्रदर्शित भी की; किन्तु अब सब व्यर्थ था। गोरा ने इस अवसर पर भीमसिंह को प्रभावित करके आमन्त्रण अस्वीकार कराने का यत्न किया; किन्तु भीमसिंह ने उसी क्रोधावेश में कहा—

"मैं किसी को यह कहने का अवसर नहीं देना चाहता कि राजपूत तातार से डर गया। मेरा घोड़ा लाओ।"

[५]

महाराणा का घोड़ा अनिच्छा-पूर्वक सजाकर फाटक के निकट लाया गया। भीमसिंह तीनों तातारों के साथ अकेले बेधड़क शाही शिविर की ओर बढ़े जा रहे थे। इनके मन में एकाध बार यह विचार अवश्य उत्पन्न हुआ, कि भीमसिंह तुमने भूल की है; पर अपने शब्द फेर लेना भीमसिंह के लिये सम्भव नहीं था। तातार-शिविर पहुँचने पर भीमसिंह को शाही खेमे में ले जाया गया। बादशाह के इशारे पर सभी तातार सैनिक और रक्षक भीमसिंह को अद्भुत दृष्टि से देखते रहे। जब अलाउद्दीन अपने खेमे में भीमसिंह को लेकर पहुँच गया, तो उसका रुख बिल्कुल बदल गया। उसने अपनी आँखें लाल-लाल करके अपने प्रधान सेनापति अब्दुल्लाखाँ को आज्ञा दी, कि भीमसिंह को कैद कर

लो ! भीमसिंह सिंह की भाँति गर्ज उठे और आगे बढ़ने वाले दो व्यक्तियों को पलक झांकते ही उन्होंने तलवार के घाट उतार दिया; किन्तु जब एक के ऊपर एक साथ सौ टूट पड़ें तो उनका बस ही क्या चल सकता हैं। भीमसिंह भी चोट खा गए और कैद होने पर भी गर्ज कर अलाउद्दीन से बोले—"आप तातार से इमानदारी की बानगी दिखा रहे हैं। भगवान की शपथ, आप अपने इस कृत्य का फल चखेंगे।"

"नहीं," बादशाह ने जवाब दिया "फल तो आपको चखना पड़ेगा। अगर पद्मिनी चौबीस घण्टे में मेरे पास न ला दी गई, तो आपकी जान ले ली जायगी। ले जाओ इन्हें यहाँ से।"

भीमसिंह के मुँह से झाग निकल पड़ी। उन्होंने अपने असाधारण राजपूत-शौर्य का प्रदर्शन करते हुए उछल कर सैनिकों से अपना शरीर छुड़ा लिया और शेर की तरह अलाउद्दीन पर झपटे। किन्तु अलाउद्दीन एक ओर हो गया और फिर सैनिकों का झुण्ड भीमसिंह पर टूट पड़ा। अन्ततः भीमसिंह को फिर कैद करके शाही खेमे के पार्श्ववर्ति शिविर में जबर्दस्ती घसीटकर पहुँचाया गया। बादशाह ने मीर मुँशी को बुलाने का हुकम दिया। एक और सन्देश लिखकर तैयार किया गया। सन्देश-वाहक उसे लेकर घोड़े पर चित्तौर की ओर रवाना हो गया।

× × × ×

उधर गोरा अपने भतीजे बादल के साथ पद्मपोल के पास वृक्ष के नीचे खड़े चिन्तित भाव से विचार कर रहा था। घुड़-

सवार को आते देख गोरा ने कहा—"देखें क्या समाचार आ रहा है।"

बालक बादल में विलक्षण शौर्य के साथ प्रखर प्रतिभा भी थी। उसने यवन-राज पर कभी विश्वास नहीं किया। उसे ऐसा मालूम हुआ, कि कोई और भी दुःखद घटना चित्तौड़ के भाग्य में बदी है। धूल के बादलों के साथ सन्देश वाहक पद्मपोल के पास आ पहुँचा और एक लिफाफा वहीं फेंक कर घोड़ा मोड़कर भगा ले गया। राजपूत द्वार-रक्षक को सन्देश-वाहक का यह ढंग देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। गोरा और बादल फाटक की ओर लपके। द्वार-रक्षक ने लिफाफा गोरा के हाथ में दिया। गोरा ने मुहर तोड़ कर सन्देश पढ़ा। राजपूतों का एक दल अब तक उसके पास एकत्रित हो गया था। सब ने चिन्ता-पूर्वक साँस रोक कर सन्देश का एक-एक शब्द पढ़ा। बादल ने अपने चाचा के मस्तक पर पसीने की बूँदे देखीं और भौंहों पर तनाव।

"भीषण समाचार है" गोरा ने चिन्तित भतीजे की ओर देख कर कहा—"सब प्रमुख सरदारों को बड़े कक्ष में बुला कर लाओ।"

द्वारवान की उत्सुकता शान्त किये बिना ही वह आगे बढ़े। बादल प्रमुख सरदारों और सैनिकों को सूचित करने के लिये आगे बढ़ा।

× × × ×

विशाल कक्ष में सब के एकत्रित हो जाने पर परामर्श सभा की व्यवस्थ. हुई। कक्ष में एक ओर शीशे के पास पर्दा अब तक

लटक रहा था। गोरा ने ऊँचे स्वर में बादशाह का चुनौतीपूर्ण सन्देश पढ़ सुनाया। उपस्थित सरदारों का क्रोध, क्षोभ और घबराहट उसे सुन कर और भी बढ़ गई। भीमसिंह को छोड़ने की शर्त राजपूत जाति के लिये कितनी अप्रतिष्ठाजनक थी।

"मैंने निश्चय कर लिया है," गोरा ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—"राजपूत अपनी स्त्रियाँ शत्रुओं के हाथ में नहीं सौंपा करते। भाइयो! आप लोग जाकर अपने-अपने सिपाही तय्यार करें। आज भगवती हमारी वास्तविक बलि चाहती है। मेवाड़ की बालुकामयी-भूमि अतिशय रक्त पिपासु हो रही है। हम लोग चित्तौड़पति को यवनों के पंजे से छुड़ाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

समस्त राजपूत सरदारों के कण्ठ से इस निश्चय की प्रशंसा में स्वीकृति सूचक स्वर एक साथ निकल पड़े। सब ने एक साथ तलवारें म्यान से निकाल कर ऊपर उठाई और प्रतिष्ठा के लिये प्राण देने का प्रण किया।

× × × ×

'युद्ध में क्रूरता और शान्ति में कोमलता दिखाना राजपूतों का धर्म है," गोरा ने कहा—"भाइयो, अपने-अपने घोड़ों पर सवार हो तुरन्त अपने-अपने सैनिक बुला लाइये; अब बिलम्ब नहीं होना चाहिये।"

एक द्वार खुला। राजपूतों की उत्तेजना उत्सुकता में परिवर्तित हो गई। दहलीज में महाराणी पद्मिनी आवरणावृत होकर खड़ी

थीं। वही पद्मिनी जिसके लिये दो जाति के सूरमा रक्त की नदी बहाने को संबद्ध थे।

"ठहरिये चाचाजी" अपनी मृणाल बाहु उठाते हुए पद्मिनी ने कहा—"मैं सब सरदारों से कुछ कहना चाहती हूँ।"

क्षण भर में सारा कक्ष स्तब्ध हो उठा। सब सरदारों की दृष्टि आदर से झुक गई; किन्तु फिर भी इस अवसर पर महाराणी का आगमन उन्हें वांछनीय नहीं प्रतीत हुआ। सरदारों ने समझा कि कदाचित पद्मिनी गोरा के निश्चय में कोई अन्तर उपस्थित कर दे।"

"चाचाजी" पद्मिनी ने गोरा को दृढ़ता-पूर्वक संबोधन करके कहा—"मैंने सुना है कि मेरे स्वामी तातार शिविर में कैद कर लिये गये हैं और उनके छुटकारे की शर्त यह लगी है कि मैं अलाउद्दीन के पंजे में दे दी जाऊँ। क्या यह सच है ?"

गोरा ने स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिलाया और दाढ़ी पर हाथ फेर कर संभवतः वह यह सोचने लगा कि शायद इस बार भी स्त्री की बुद्धि राजपूत जाति की प्रतिष्ठा-रक्षा करते हुए भीमसिंह को छुड़ा सकने की कोई योजना बना सके।

"तो फिर इस शर्त को पूरी हो जाने दीजिए" पद्मिनी ने और भी सुदृढ़ भाव से कहा—"चित्तौड़पति को कोई क्षतिग्रस्त हुए बिना छुटकारा दिलाने और घेरा उठवा देने के लिये मैं आत्म-समर्पण करने के लिये तैयार हूँ।"

सब सरदारों ने एक स्वर से पद्मिनी की इस बात का विरोध

किया। एक एक करके सबने इस प्रस्ताव का प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा कि वह अपनी महारानी की यह अप्रतिष्ठा सहन न करेंगे। इससे राजपूत-शौर्य और पवित्रता का इतिहास कलंकित हो जायगा। स्त्री की इज्जत गँवाकर पुरुष के प्राण बचाना राजपूत परम्परा के प्रतिकूल होगा। सभी राजपूत सरदार पद्मिनी और गोरा को घेर कर इस प्रस्ताव का अधिकाधिक विरोध करने लगे। झीने घूँघट से पद्मिनी ने राजपूत सरदारों की उत्तेजित मुखाकृति देखी और उनके क्रोधावेशयुक्त मुख-मण्डल से उनकी मनोभावना की पूरी थाह ले ली।

"सरदारवृन्द ठहरें" पद्मिनी ने कटार दिखाते हुए कहा— "पद्मिनी आत्म-समर्पण नहीं, आत्मबलि देकर राजपूत जाति की प्रतिष्ठा-रक्षा करेगी। ज्यों ही मेरे स्वामी छुटकारा पाकर सुरक्षित रूप से चित्तौड़ आ जायेंगे; मैं अलाउद्दीन खिलजी द्वारा अपना शरीर स्पर्श होने के पूर्व ही इसे अपने कलेजे में भोंक लूँगी। म्लेच्छ को जीवित पद्मिनी न मिलेगी।"

यह शब्द इस दृढ़ता के साथ पद्मिनी के मुख से निकले थे कि राजपूत सरदारों के सिर झुक गये। इससे उन्हें यह निश्चय हो, गया कि महाराणा भीमसिंह को छुड़ाने में महारानी पद्मिनी कोई अप्रतिष्ठाजनक व्यवहार न करेंगी। पद्मिनी के आत्मोत्सर्ग की धाक उनके हृदयों पर जम गई। उनके हृदय में अपनी महारानी के प्रति श्रद्धा बढ़ गई। उन्होंने अब यह बात मान ली कि पद्मिनी राजपूत-स्त्रीत्व की प्रतिष्ठा घटाने के बदले आत्मबलि द्वारा उसे

बढ़ाकर आकाश में ले जा रही हैं।

"महारानी ने ऐसा उच्च संकल्प प्रकट किया है, जो राजपूत जाति के लिये शोभाजनक है।" गोरा ने कहा—"किन्तु भाइयो, महाराणा की अनुपस्थिति में चित्तौड़ का शासन मैं करता हूँ। मैं इस बात को स्वीकार नहीं कर सकता कि एक स्त्री जाकर आत्मबलि दे और हम तलवार भाले बांध कर राजपूती शूरता का अपमान करायें।"

× × ×

गोरा की बातों का स्वागत सभी राजपूत सरदारों ने हर्षध्वनि के साथ किया। अधिक सावधान सरदार महारानी के प्रस्ताव को स्वीकार करने में हिचकिचा रहे थे; पर अब गोरा की बातों से सभी सन्तुष्ट हो गये। पद्मिनी ने उन्हें यह समझाने का व्यर्थ प्रयत्न किया कि एक व्यक्ति की आत्मबलि से सहस्रों की जानें बचेंगी; किन्तु उस ओर से सभी राजपूतों ने मानों कान बन्द कर लिये।

बादल ने सभी तर्क-वितर्क सुन लिये। उस राजपूत बालक में भीमसिंह जैसा शारीरिक शौर्य और गोरा-जैसी परिपक्व बुद्धि इस अल्प अवस्था में ही मौजूद थी। उसने महारानी के प्रस्ताव और गोरा के निश्चय को ध्यान से सुनकर उस पर विचार किया। इसके पश्चात् जब सरदारों ने आक्रमण के रूप पर विचार किया तो बादल को जैसे कोई नवीन बात सूझ गई।

"ठहरिये चाचाजी" बादल ने बाल-सुलभ सरलता से कहा—"मेरी बात सुनिये।"

पद्मिनी ने बादल की ओर उत्साहजनक दृष्टि से देखा और यह आशा की, कि शायद उसने रक्तपात रोकने के लिये कोई नई योजना सोची हो। गोरा तथा राजपूत सरदारों ने उसे आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से देखा।

"हाँ बेटे" गोरा ने अधीरतापूर्वक कहा—कहो क्या कहते हो?

बादल सबको अपनी ओर आकर्षित करने के बाद कुछ संकोच और हिचकिचाहट में पड़ गया। किन्तु महारानी ने आगे बढ़ कर उसकी गर्दन पर हाथ फेरते हुए कहा—'बोलो बादल, डरो नहीं।"

पद्मिनी की आश्वासनयुक्त वाणी ने बालक के साहस में पुनः वृद्धि कर दी। वह तुरन्त बोला—"चित्तौड़वासी सरदारो! आप लोग दिल्ली की लोमड़ी को यह संदेशा भेजें, कि महारानी महाराणा का प्राण बचाने के लिये अपने आपको समर्पित करने के लिये तय्यार हैं" राजपूत सरदार इस पर बड़बड़ा उठे, किन्तु बादल बोलता ही गया, "किन्तु महारानी को उनके दर्जे के अनुसार सखी सहेलियों और बाँदियों सहित ७०० पालकियों में आने दिया जाय और प्रत्येक पालकी ६ कहारों द्वारा उठाई जाकर तातार-शिविर में पहुँचे।"

राजपूत सरदारों का ध्यान बालक बादल की बातों की ओर अधिक आकृष्ट हुआ। बादल ने अब अपनी योजना उन्हें विस्तार

पूर्वक समझाना आरम्भ की—"अलाउद्दीन को इस बात का प्रबन्ध कठोरता पूर्वक करना होगा, कि स्त्री-जाति की गोपनीयता की रक्षा हो और कोई भी व्यक्ति उसे भंग करने के लिये उत्सुक न हो; किन्तु हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिससे प्रत्येक पालकी में महारानी और उनकी बाँदियों के बदले सशस्त्र राजपूत मौजूद हो और प्रत्येक पालकी उठाने वाले छः व्यक्ति भी कहार का भेष बदले हुए राजपूत हो।"

राजपूत सरदारों ने एक दूसरे की ओर देखा। यद्यपि राजपूत सरदार शूर-वीरता और युद्ध-कला में अद्वितीय थे; किन्तु उनका हृदय बच्चों का सा था और भेष बदलने के हास्य और कौतूहल युक्त प्रस्ताव पर वह सहज ही सहमत हो गये। गोरा ने उन सबके मनोभावों को ताड़ते हुए कहा—"लड़के की बात युक्ति-संगत है, पालकी में से चित्तौड़ की महारानी के बदले जब अलाउद्दीन के सामने सशस्त्र राजपूत निकलेगा तो वह हक्का-बक्का रह जायेगा। बड़ा मज़ा आएगा। हा, हा, हा, हा!"

सभी राजपूत ठठाके हँस पड़े और वह विशाल कक्ष उनके कहकहे से गूँज उठा। केवल महारानी पद्मिनी ने इस उल्लास में भाग न लिया। उन्होंने बादल को भर्त्सना भरी दृष्टि से देखा। पद्मिनी ने रक्तपात रोकने के लिये कितना प्रयत्न किया था; किन्तु अन्त में वह अनिवार्य प्रतीत हुआ। वह फिर भी राजपूत योद्धाओं को युद्ध से रोकने का प्रयत्न करती रही, किन्तु अब उन्होंने पद्मिनी के तर्क-वितर्क की ओर ध्यान न दिया।

"पद्मिनी," गोरा ने कहा—"युद्धप्रिय राजपूतों को युद्ध से

बचाने का प्रयत्न न करो। अपने कक्ष में जाओ। सन्ध्या होने के पूर्व तुम्हारे स्वामी तुमसे आ मिलेंगे, चाहे इस प्रयत्न में मेरे प्राण भले ही चले जायँ, पर मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं उन्हें छुड़ा कर ही रहूँगा।

एक-एक कर सभी राजपूत सरदार महारानी के सामने झुकते हुए वहाँ से विदा होकर भावी योजना की तैयारी के लिये चले गये। अन्त में उस विशाल राजकीय कक्ष में पद्मिनी अकेली रह गई। वह सोचने लगी—मेरे कारण यह भीषण नर-मेध, भयानक संहार और रक्तपात!" भावावेश के कारण पद्मिनी का शरीर काँप उठा। ऊनके कोमल कपोलों पर आँसुओं की धारा बह चली।

[६]

अपराह्न में राजपूत सन्देश-वाहक तातार-शिवर में पहुँचा। उसने स्वयं दिल्लीपति से मुलाकात करने की याचना की। अला-उद्दीन उस समय शाही शिविर में आराम से लेटा-लेटा कुबड़े हाफ़िज़ से बातें कर रहा था। सन्देश-वाहक को अन्दर बुलाया गया। उसने सन्देश-पत्र शाह के सामने पेश किया। बादशाह ने गम्भीरतापूर्ण सन्तोष के साथ सन्देश सुना। वह सोचने लगा, कि इस बार तीर ठीक निशाने पर पड़ा है। सूरज डूबने से पहले-पहले पद्मिनी मेरे हरम में दाखिल हो जायेगी। वह अपने स्थान से उठकर सजे फर्श पर चेहल-कदमी करने लगा। अपनी योजना की सफलता से वह ऐसा आह्लादित हो रहा था, कि अपने मनो-भाव छुपा न सका। अन्तत: उसने राजपूत सन्देश-वाहक की ओर देखकर कहा—"जाओ, अपने मालिक से कहो, कि उनकी

बात मंजूर है। मैं हिदायत कर दूँगा कि पद्मिनी और उनकी बाँदियों को कोई न छेड़े। पद्मिनी के साथ दिल्ली जाने की ख़ाहिश रखने वाली बाँदियों के साथ अच्छा बर्ताव किया जायेगा और जो चित्तौड़ लौटना चाहेंगी; उनके भी बाहिफ़ाज़त लौटने का इन्तज़ाम कर दिया जायेगा।"

सन्देश-वाहक बिदा हुआ और विचार में डूबा हुआ शाहंशाह फिर चेहलकदमी करने लगा। कुबड़ा-हाफ़िज़ दिल्लीपति की मनोदशा पर कुटिल कटाक्ष के साथ हँसकर बोला,—"मुझे राजपूतों की यह अर्ज़ पसन्द नहीं आई। एक औरत के साथ सात सौ बांदियाँ; मुझे तो यह बात पसन्द नहीं आई।"

बादशाह ने कुबड़े की ओर देख कर कहा,—"तुम यह बात न समझ सकोगे, हाफ़िज़! तुमने कभी मुहब्बत की दुनियाँ में कदम ही नहीं रखा है। आख़िर पद्मिनी अपने नये मालिक को खुश करने के लिये कुछ तो शानोशौकत दिखायेगी।"

कुबड़ा अपनी पूर्ववर्ती मुखमुद्रा में कोई भी परिवर्त्तन लाये बिना बड़बड़ाया,—"मुझे यह बात पसन्द नहीं आई, सुलतान! होशियार होकर काम करना चाहिये। मुझे तो ऐसी बातें खौफ़नाक मालूम होतीं हैं; इनसे बुराई की बू आती है।"

"बस!" बादशाह ने कहा—"यह वक्त ज्यादा बड़बड़ाने और होशियारी करने का नहीं;—मैं अब तनहाई पसन्द करूँगा। तुम जा सकते हो।"

× × × ×

किन्तु अलाउद्दीन अपने हृदय को मन के वश में न कर सका; उल्टे उसका हृदय ही मन पर प्रभाव जमा बैठा। वह क्षण भर रुक कर यह विचार भी न कर सका, कि उसका हृदय उसे किधर लिये जा रहा है। इस समय वह हिन्दुस्तान का सम्राट् नहीं था कि प्रत्येक बात सोच-विचार कर ठण्डे दिल से करता। इस समय तो वह उस सफल प्रेमी की भाँति आनन्द-विभोर हो रहा था, जिसे अभीष्ट-प्राप्ति में अधिक विलम्ब नज़र नहीं आता। इसीलिये उसने कुबड़े हाफिज़ की बातों को अनसुनी करते हुए इस प्रकार की उपेक्षा प्रदर्शित की, जिसके परिणामस्वरूप उसे मेवाड़ की भूमि पर अपने हज़ारों चुने हुए सैनिकों के प्राण गँवाने पड़े।

मध्याह्न-कालीन सूर्य अभी पहाड़ियों के पीछे छिपा भी न था, कि चित्तौड़गढ़ का फाटक खुला और पालकियों का एक लम्बा ताँता उससे बाहर निकलकर तातार शिविर की ओर बढ़ा। अलाउद्दीन शाही शिविर के दर्वाज़े पर खड़ा आकांक्षा और उत्सुकता-मिश्रित भावना से आगत पालकियों के इस विस्तृत प्रदर्शन को देख रहा था। सबसे अगली पालकी के साथ घोड़े पर सवार गोरा आ रहा था। यह पालकी उन विशिष्ट राजकीय चिह्नों से सुन्दरता के साथ सजाई गई थी, जिनके देखते ही मालूम हो जाये, कि यह महारानी की सवारी है। सुन्दर सुनहरे काम के अतिरिक्त बीच में सूर्य भगवान की स्वर्णमूर्ति और अस्त्र-चिह्न था।

धीरे-धीरे पालकियों का यह प्रदर्शन निकट आने लगा। प्रत्येक पालकी के अनभ्यस्त कहार अपने असाधारण बोझ के कारण

पसीने से तर-बतर हो रहे थे। जब गोरा बादशाह के निकट पहुँचा, तो अलाउद्दीन के सरदार और सैनिक उसके पास खड़े दिखाई दिये। गोरा घोड़े से उतर पड़ा और उसकी लगाम पकड़े हुए आगे बढ़ा। उत्सुक नेत्रों का केन्द्र बनी हुई राजकीय पालकी धीरे से ज़मीन पर रख दी गई।

"दिल्लीपति," गोरा ने सम्राट् को कृत्रिम नम्रता दिखाते हुए उच्च स्वर से कहा, "भगवान् हमारे विरुद्ध हो गये हैं। हमें अत्यन्त लज्जा के साथ आज अपनी महारानी को आपकी सेवा में सौंपना पड़ रहा है। क्या हम आशा करें, कि अब आप अपने वचन का पालन करते हुए हमारे स्वामी को मुक्त करके आठ पहर के अन्दर चित्तौड़ का घेरा उठा लेंगे?"

"ऐसा ही होगा।" अलाउद्दीन ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया।

किन्तु वचन देकर भी अलाउद्दीन भीमसिंह को छोड़ना न चाहता था। वह कोई-न-कोई बहाना बना कर भीमसिंह को कैद ही रखना चाहता था। बादशाह शक्ति को ही प्रधान वस्तु मानता था; वचन-पालन को वह उतना महत्त्व न देता था, जितना राजपूत दिया करते थे। वह राजपूत जाति की महारानी को प्राप्त कर और किले पर अधिकार जमा कर राजपूतों का विनाश किया चाहता था।

× × ×

"तो फिर दिल्लीपति," गोरा ने अगली पालकियों के आरोहियों के तथा कैदी भीमसिंह के सुनने योग्य उच्च स्वर में बादशाह

को सम्बोधन कर कहा—"महारानी आप से एक ही वचन मांगती हैं और वह यह है कि आप से मिलने के पूर्व उन्हें अपने स्वामी से बिदा-भेंट करने की आज्ञा मिले।"

अलाउद्दीन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। गोरा ने आन्तरिक चिन्ता के साथ उसकी ओर देखा। उसके उत्तर पर बहुत कुछ निर्भर करता था। उसकी हिचकिचाहट के साथ सन्देह की कुछ पुट अवश्य थी; किन्तु जब बादशाह ने आस-पास अपने सैनिकों का दल देखा, तो वह सन्देह क्षण ही भर में उसके आत्मविश्वास में लुप्त हो गया।

"मंजूर है।" उसने गोरा की ओर देखकर कहा। फिर अब्दुल्लाखाँ को सम्बोधन कर बोला—"महारानी की पालकी भीमसिंह के खेमे की ओर लिवा ले जाओ और पहरेदारों से कहो, कि पालकी अन्दर जाने दें।"

उधर गोरा की आज्ञा पाकर छद्मवेशी कहारों ने झुक कर राजकीय पालकी उठाई और उनके पीछे-पीछे चल पड़े। दूर तो जाना न था; कोई बीस ही गज के फ़ासले पर वह खेमा था, जिसमें चित्तौड़ाधिपति कैद थे। बादशाह ने देखा, कि द्वार का पर्दा उठा और पालकी अन्दर पहुँचाई गई। कुछ ही क्षण बाद कहार वेश-धारी राजपूत खाली पालकी लेकर वापस लौटे। पालकी का पर्दा हटा दिया गया और कृत्रिम कहार खेमे के पहरेदार से बातें करने लगे।

लगभग पाव घण्टे का समय व्यतीत हो गया, तो बादशाह

अधीरतापूर्वक चेहलकदमी करने लगा। उसके सरदार धीरे-धीरे आपस में बातें करने लगे !

"मुझे यह सब पसन्द नहीं; बिल्कुल नहीं !" कुबड़ा-हाफ़िज़ फिर बड़बड़ाया ।

"क्या सब ?" अब्दुल्ला ने उसकी बातें सुनकर पूछा ।

"यही ७०० पालकियाँ। अब्दुल्लाखाँ, भला इतनी पालकियों की क्या ज़रूरत थी ?" कुबड़े ने कहा ।

"क्या कहा, हाफ़िज़ ?" सन्दिग्ध अब्दुल्लाखाँ ने मानो सुनी बात फिर सुन के अपना सन्देह दृढ़ करने के विचार से पूछा। उसने ७०० पालकियों की लम्बी कतार और एक पर तैनात छः छः कहारों की ओर देखा। बादशाह का सिपहसालार होने के नाते अब्दुल्लाखाँ पर अपने मालिक की रक्षा का उत्तरदायित्व था। उसने बिना किसी विशेष प्रयत्न और तय्यारी का प्रदर्शन किये सशस्त्र सैनिकों की छोटी-सी टोली बटोर ली, और बादशाह की रक्षार्थ चारों ओर से घेर कर वह घटना विकास की प्रतीक्षा करने लगा ।

लगभग पाव घण्टा और गुज़र गया। अलाउद्दीन को यह लम्बी मुलाकात असह्य-सी प्रतीत होने लगी। उसने प्रकटतः कहा— "बस, काफी हो चुका, सरदार गोरा। अब आप महारानी से अर्ज़ कर दें, कि वह मुझ से मुलाकात करें।"

× × ×

गोरा अपने घोड़े की रास पकड़े खेमे की ओर बढ़ा। राजपूत-

शौर्य प्रदर्शित करने का उपयुक्त अवसर अब आ गया था। गोरा अपने स्नायु-तन्तुओं पर पूरा नियन्त्रण करते और अपने कार्य के महत्व को भली-भाँति समझते हुए क्षण-भर में सब कुछ निश्चय कर लिया। खेमे के द्वार पर स्थित छओं कृत्रिम कहारों में भी इस समय कुछ हल्की-सी खलबली मची और अब वह अपना वास्तविक रूप अधिक देर तक छिपाने में असमर्थ से हो गये।

गोरा ने कैदखाने वाले खेमे के दरवाजे पर पहुँच कर सब से पहले पलक झपकते ही भुजाली से पहरेदार का काम तमाम कर दिया और उच्च स्वर से कहा—"मारो; यवनों को मार गिराओ! चित्तौड़ की जय! महाराणा भीमसिंह की जय!!"

क्षण-भर में समस्त तातार शिविर में तहलका मच गया। घोर चीत्कार और नर-मेध का लोमहर्षण दृश्य उपस्थित हो गया। राजकीय पालकी उठाने वाले छः कहार भेषधारी राजपूत भीमसिंह के खेमे में वेगपूर्वक घुस गये और तुरन्त सशस्त्र होकर भीमसिंह और बादल के साथ बाहर निकले। अब क्या था; प्रत्येक पालकी में छुपे हुए राजपूत योद्धा अपने-अपने अस्त्र लेकर निकल पड़े और कृत्रिम कहारों ने डोलियों के अन्दर अपने-अपने हथियार निकाल कर उनका अनुसरण किया। यह सारे राजपूत पार्श्ववर्ति तातार सेना पर टूट पड़े। भीमसिंह अपने देर से रोके हुए क्रोध को न रोक सके और गोरा के लाये हुए घोड़े पर चढ़ कर सैनिकों और अङ्ग रक्षकों से घिरे अलाउद्दीन पर आक्रमण करने के लिये बढ़े।

उधर तातार भी असावधान न थे। उन्होंने क्षण भर में ही सब कुछ जान लिया और सारी सेना को सतर्क तथा तय्यार कर लिया। अब्दुल्लाखाँ ने बादशाह को सुदृढ़ घेरे के अन्दर कर दिया और स्वयं आगे बढ़ते हुए भीमसिंह का मुकाबिला करने को तय्यार हो गया। भीमसिंह ने अपने पहले ही झपाटे में तलवार का वह हाथ मारा, कि अब्दुल्लाखाँ अपने घोड़े सहित धराशायी हो गया और उसके नीचे और कई तातार कुचले गये। भीमसिंह अपने ५००० योद्धाओं के साथ तातार-सेना को घास की तरह काटते हुए आगे बढ़े।

× × × ×

पूर्व-सावधानी के अभाव से तातारों के बहुत से सैनिक तलवार के घाट उतर गए। तातार-शिविर घोर श्मशान के रूप में परिणत हो गया। आहतों के चीत्कार से आकाश थर्राने लगा। रेतीली भूमि पर भी रुधिर की धारा बहने लगी। सूर्यास्त के समय का आकाश भी मानो मेवाड़ की इस रक्तप्लावित पृथ्वी से सन्धि कर रहा था।

किन्तु तातार-सेना की संख्या अपार थी, और वह थी भी लड़ने में कुशल। कुछ देर की घबराहट के बाद वह सम्भल गई। तातारों ने देखा, कि राजपूतों का लक्ष्य रुक कर लड़ने के बदले अपने प्रमुख सरदारों को चित्तौड़ की ओर बढ़ाते हुए लड़ने का है। इससे तातार शीघ्र संगठित हो गये और उनकी विशाल सेना राजपूतों की पंक्ति तोड़ने के लिये आक्रमण करने लगी। राजपूत योद्धा

आत्म-रक्षा के लिये बड़ी बहादुरी से लड़े और लड़ाई के साथ धीरे-धीरे अपने दुर्ग की ओर बढ़ते भी गये। इनके इस दुहरे प्रयत्न में बहुत से योद्धा काम आ गये। फिर भी, तातार सेना की बड़ी संख्या उन्हें वश में न कर सकी। सन्ध्या का अन्धकार बढ़ने लगा; फिर भी, युद्ध में कुछ भी शिथिलता न आई। दोनों ही दल इस युद्ध को अन्तिम सङ्घर्ष बनाने पर तुले हुए थे। तातार सेना राजपूतों को किले की ओर बढ़ने से रोकने का पूर्णप्रयत्न कर रही थी।

बादशाह अब तक तो अपनी सेना और अंग-रक्षकों से घिरा था; पर अब उसे इस बात पर बड़ा क्रोध आया, कि राजपूतों ने उसे दो बार कैसा बेवकूफ बनाया। वह क्रोधातिरेक के कारण घेरे से निकल कर राजपूत सेना पर टूट पड़ा। लड़ते-लड़ते एक बार भीमसिंह के सामने भी जा पहुँचा और दोनों में द्वन्द्व-युद्ध होने ही को था, कि उनके सैनिकों ने बीच में पड़ कर उन्हें पृथक् कर दिया।

× × × ×

तातारों की विशाल और उमड़ती हुई सेना ने अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक राजपूत सैनिकों को किले की ओर बढ़ने से रोकने और उनकी पंक्ति भंग करने के लिये अनेक बार और अनेक तरह के प्रयत्न किये; किन्तु अवशेष राजपूत योद्धा लड़ते हुए अपने दुर्ग की ओर बढ़ते ही गये। ५००० राजपूतों में अब केवल ५०० शेष रहे थे। पद्मिनी महल के कंगूरे से यह भीषण नरमेध देख

अपना मुँह अपने हाथों से ढँककर रो उठी,—"भगवान्, मेरे कारण यह घोर रक्तस्रावन ! जगन्नियन्ता, चित्तौर को तुम क्यों भूल गये ?"

× × × ×

जब राजपूत-सेना पद्मपोल तक पहुँच गई, तो राजपूत सैनिकों का एक और दल गढ़ से बाहर उसकी सहायता को आ गया और उसने तातार सेना को रोककर अवशिष्ट और घायल राजपूतों को दुर्ग-प्रवेश करने में मदद दी और पीछे स्वयं भी गढ़ में प्रविष्ट हो गया।

"फाटक बन्द कर दो।" भीमसिंह ने तातारों को अन्दर आने से रोकने के लिये गर्जकर कहा। इस समय तक भीमसिंह का घोड़ा काम आ चुका था और वह पैदल थे। पगड़ी का एक छोर दाँतों-तले दबाये एक हाथ से वह दूसरे हाथ के ज़ख्म पर पट्टी बांधते हुए साक्षात् युद्ध का रूप धारण किये हुए थे। उनकी आँखें रक्त की प्यासी हो रही थीं और शरीर के अनेक जख्म बतला रहे थे, कि उन्होंने न जाने कितने तातार सैनिकों को यमलोक पहुँचा दिया था। उन्होंने अपने अवशिष्ट योद्धाओं की ओर शोकपूर्वक देखा। उनकी नैराश्यपूर्ण दृष्टि अन्ततः बादल पर पड़ी। बालक बादल के सिर में एक गहरा जख्म आया था, जिस पर एक राजपूत सैनिक पट्टी बांध रहा था।

"तुम्हारे चाचा कहाँ हैं, बादल ?" भीमसिंह ने बादल से अपने भर्राते हुए स्वर में पूछा।

बादल की आँखों से आँसू छलक आये। उसने युद्ध-क्षेत्र की ओर इशारा कर—"रणभूमि में वीर-गति को प्राप्त हो गये।"

भीमसिंह के मुँह से एक ठण्डी आह निकल गई। कितने ही राजपूत सूरमा काम आ चुके थे; किन्तु गोरा को खोकर भीमसिंह ने अपना सर्वश्रेष्ठ सैनिक, सर्वोच्च मन्त्री और सर्वाग्रगण्य हितैषी गँवा दिया। यह धक्का असह्य था। भीमसिंह ने विचार किया, कि गोरा की मृत्यु का कारण वही हैं; क्योंकि उन्हीं की हठधर्मी और त्वरापूर्ण गौरव-भावना के कारण गोरा को ऐसी योजना बनानी पड़ी, जिससे उसकी मृत्यु हुई। भीमसिंह आत्म-ग्लानि से तड़प उठे।

"जाओ, अपनी फूफी से कह दो, कि मैं फाटक छोड़ कर अन्दर नहीं आ सकता; अभी मुझे यहाँ बहुत कुछ करना है।"

संघर्ष अभी समाप्त न हुआ था। किले के बुर्ज पर से और तातारी सेना के बीच से तीरन्दाज़ अपने-अपने निशाने लगाने में व्यस्त थे। तातारों ने किले में प्रवेश करने के लिये जी-तोड़-कोशिश की। उनके संयुक्त आक्रमण से विशाल फाटक हिल उठा।

बादल के शिर पर बँधी पट्टी से अब भी रक्त बह रहा था। उसने ठण्डी साँस ली और भीमसिंह की आज्ञा-पालन के लिये दौड़ पड़ा। युद्ध में थका हुआ बालक उस अवस्था में भी सीढ़ियों पर तेजी से चढ़ रहा था, किन्तु क्लान्त शरीर पर युद्ध-परिधानों का बोझ उसके शरीर को म्लान बना रहा था। इसके अतिरिक्त उसे पद्मिनी को गोरा की मृत्यु का दुःखद समाचार देना था।

पद्मिनी को वह माता के समान मानता था। आज उसके पास वह कैसा क्लेशप्रद समाचार सुनाने के लिये जा रहा है। किन्तु क्षत्रिय-बालक कर्त्तव्य-पथ पर किस दृढ़ता के साथ चलते हैं, यह बात बादल ने सिद्ध कर दी।

ऊपर पहुँच कर बादल महल के अन्तःपुर की ओर बढ़ा। ज़नाने कक्ष के निकट पहुँच कर वह क्षण भर के लिये ठिठका। फिर साहस कर के दरवाजा खोल के अन्दर घुसा। कक्ष के दूसरे छोर पर पद्मिनी खिड़की के सङ्कटाकुल वातावरण में उत्तप्त-श्वास ले रही थीं।

बादल के पहुँचते ही उन्होंने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"तुम्हारे फूफा तातारों की कैद से कैसे छूटे, बादल ?"

बादल पद्मिनी के प्रश्न का उत्तर अभी दे न सका था, कि उन्होंने फिर पूछा—"तुम्हारे चाचा कहाँ हैं, ?"

बादल के सर पर बँधी पट्टी का रक्त अभी तक सूखा न था। वह आगे बढ़ कर पद्मिनी के चरणों में गिर पड़ा।

"फूफाजी तो पद्मपोल तक आ गये हैं," बादल ने अदृढ़ और भर्राये हुए स्वर में कहा—"किन्तु चाचा जी ने शत्रु सेना को उसी तरह काट डाला जैसे किसान फसल काटता है और अब वह रणक्षेत्र में सो रहे हैं। उन्होंने चित्तौड़ की रक्त पिपासु धरणी पर म्लेच्छों की लाशें बिछा दी हैं और अब एक शाही लाश को तकिया बनाये लेटे हुए हैं। वह ऐसी मीठी नींद ले रहे हैं, कि उससे कभी न जागेंगे।"

× × × ×

इस घोर शोक-समन्वित समाचार से भी पद्मिनी विचलित न हुई। उन्होंने अपने गोद में झुके हुए बादल के माथे पर हाथ फेरा। बादल इस समय फूट-फूटकर रो रहा था।

"चुप हो बेटा। यह तो बताओ कि तुमने रणक्षेत्र में क्या किया?" पद्मिनी ने सान्त्वना-भरे शब्दों में प्यार के साथ पूछा।"

"मैंने?" बादल ने अपनी सिसकियाँ रोकते हुए कहा—"मैंने भी चाचा का अनुसरण किया और अपनी शक्ति-भर यवनों को यमलोक पहुँचाया।"

"अच्छा हुआ," पद्मिनी ने अपनी आँखों में प्रेम की झलक बढ़ाते हुए कहा—"तो क्या मुझे अब विलम्ब करना चाहिए बादल? मेरा कर्त्तव्य-धर्म स्वर्ग-लोक में मेरी राह देख रहा है।"

वह सहसा उठ खड़ी हुई और बादल ने उनकी आकृति देख कर भयपूर्वक उनके कन्धे पर हाथ रख रोकने का प्रयत्न किया।

"नहीं बादल, शोक न करो। मैं चिता सजाने जा रही हूँ। तुम्हारे फूफा के और मेरे बीच जो प्रेम है; उसके सामने दुःख या कष्ट का अस्तित्व नहीं रह सकता। प्रेम-विच्छेद और मृत्यु ऊपर की वस्तु है।"

पद्मिनी दृढ़निश्चय और अहम्मन्यता-पूर्ण भावना के साथ उस विशाल कक्ष के दूसरे छोर की ओर बढ़ी। बादल अपने आँसुओं

का वेग रोके अवाक् खड़ा श्रद्धापूर्वक पद्मिनी को जाते देखता रहा। उसने अपनी फूफी के क्षत्राणियोचित सङ्कल्प को सुनकर मन ही मन उसकी प्रशंसा की और यह विचार किया कि पद्मिनी के प्रेम और उत्साह को मृत्यु भी रोक न सकेगी।

सहसा बादल ने पद्मपोल की ओर से तुमुल ध्वनि सुनी। उसने खिड़की से झाँक कर देखा। नीचे उसने जो दृश्य देखा उसे देखते ही वह अन्तःपुर के पार्श्व भाग की ओर लपका।

× × × ×

रात भर राजपूत-तातार-सङ्घर्ष जारी रहा। तातार की प्रबल संख्या कुछ तो कर्त्तव्य के ख्याल से, और कुछ चित्तौड़ दुर्ग की विजय और लूट के बाद लम्बे पुरस्कार पाने की आशा से जी-जान से प्रयत्न में लग गई। आत्म रक्षा के लिये लड़ने वाले राजपूतों की संख्या पहले ही घट चुकी थी; किन्तु लड़ाई की थकावट और संघर्ष-जनित घावों के होते हुए भी वह तातारों का मुकाबला करने में तनिक भी मुँह मोड़ने को तैयार न थे। इस पर भी शत्रु सेना की लहरों पर लहरें दुर्ग पर चढ़ती आ रही थीं। उन राजपूतों की वीरता का वर्णन क्या किया जाये, जो अपनी और अपनी नारी जाति की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिये जान हथेली पर लिये लड़ रहे थे। इसीलिये तातारों की प्रबल संख्या को भी उन गिने-चुने राजपूतों ने आगे न बढ़ने दिया, परंतु सागर की तरह उमड़ती हुई तातार-सेना अब चित्तौड़गढ़ की सीढ़ियों को तय कर दुर्ग में प्रवेश किया ही चाहती है; किन्तु ऐसे अवसर पर एक-न-एक राज-

पूत ऐसे शौर्य का परिचय दे जाता था, कि तातार-सेना का ज्वार, भाटे के रूप में परिवर्तित हो जाता था। पद्मपोल का यह संघर्ष धीरे-धीरे चरम-सीमा को पहुँच गया। यह भयानक युद्ध घोर रात्रि की निःस्तब्धता को भंग करता हुआ, दोनों ओर के जय-घोष से आकाश गुँजा रहा था। घायलों का क्रन्दन भीभत्सता की वृद्धि कर रहा था। ऊपर के कंगूरे से भी राजपूत योद्धा शत्रु दल पर तीर चला रहे थे। इधर तातार-दल अपनी सारी शक्ति लगाकर द्वार तोड़ना चाहता था। राजपूतों ने भी द्वार-रक्षा में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। दोनों ओर से घोर तर्जन-गर्जन के साथ सूरमाओं के आक्रमण हो रहे थे। मालूम होता था, समस्त मानव-समुदाय पागल हो उठा है। पद्मपोल पर रक्त की कीच हो रही थी; उसके निकट की भूमि लाशों से पट-सी गई थी। मरणासन्न घायलों की आहों से वातावरण में लोमहर्षण-प्रकम्प भर गया था। घायलों के आर्त्तनाद से मानों पृथ्वी काँप रही थी।

× × × ×

उधर राणा भीमसिंह और बादल पतलतम सङ्घर्ष में रक्त और पसीना एक कर चित्तौड़गढ़ के फाटक पर शत्रु दल का संहार करने में लगे थे। दोनों ओर के चुने हुए सूरमा मारे जा चुके थे; किन्तु चित्तौड़ का दुर्ग अब भी पूर्ववत् सिर उठाये खड़ा था। तातारों की प्रबल सेना उसे कुछ भी झुका न सकी।

इस नर-संहार-पूर्ण रात्रि के भयानक कृत्यों को प्रकाश में

लाने के लिये पूर्णचन्द्र भी चमक रहा था। इसकी शीतल स्निग्ध किरणों से मानो आग बरस रही थी। तलवार से कटे सिरों से रक्त के फव्वारे चन्द्र-प्रकाश की शीतलता में उष्णता का बीज बो रहे थे। पद्मिनी की क्लान्त आँखों में नींद कहाँ! वह अब भी खिड़की से टकटकी लगाए चन्द्रमा के प्रकाश में चित्तौड़ के मन्दिरों के कलश और सुदूरवर्त्ति चट्टानों की ओर देख रही थी। उसका हृदय अपने स्वामी के लिये आकुल हो रहा था और इस बात के लिये चिन्तित हो रहा था, कि प्रभात होने तक न जाने कितने राजपूत वीरों की पत्नियाँ सुहाग शून्य हो जायेंगी। जो लोग युद्ध में काम आ चुके थे, वह तो स्वर्ग की शान्ति प्राप्त ही कर चुके थे; पर जो अब भी जीवित थे; उनकी चिन्ता में पद्मिनी का मन उद्विग्न हो रहा था।

पौ फटने के पहले ही जब युद्ध-क्लान्त-मनुष्य की शक्तियाँ क्षीणतम अवस्था को पहुँच गईं, आकाश में एक छोटा-सा अभ्र-खण्ड क्षितिज के कोने से उठा और मानो मनुष्य की चरम शोक-पूर्ण कृतियों पर दुःखी होके आँसू बहाने लगा। इससे मानवीय आवेश और भयङ्करता पर मानो शान्ति-स्वस्तिवाचन के संकल्प जल के छींटें पड़ गये। युद्ध-क्रिया में सङ्कोच उत्पन्न हो गया। तातारों का आक्रमण पहले ही शिथिल हो चला था; अब एक दम शान्त हो गया। हिन्दुस्तान को विजय करने का दावा करने वाला अलाउद्दीन अपने प्रयत्न में असफल रहा। उसके बड़े और प्रमुख योद्धा राजपूती वीरता के शिकार बन गये। बाध्य होके

उसने अब और आक्रमण करने का विचार त्याग दिया।

\+ + + +

प्रातःकाल के सुन्दर उजाले के साथ-साथ वृष्टि का तूफान दूर हो गया। पद्मपोल के उच्चस्थल से भीमसिंह की निद्राहीन और रक्त-कषाय आँखें तातार-शिविर की ओर देख रही थीं।

"बच्चे," उन्होंने बादल को सम्बोधन कर जंगले के सहारे झुकते हुए कहा—"तुम्हारी आँखें नई हैं। क्या तुम तातार-शिविर में कोई असाधारण घटना होती देख रहे हो?"

बादल ने अपने थके शरीर को सँभालते हुए शिविर की ओर दृष्टि दौड़ाई। उसे किसी घटना की पर्वा न थी। वह तो कहीं भी लेट कर सोना चाहता था और सोना भी इस प्रकार चाहता था, कि फिर उठने न उठने की चिन्ता ही शेष न रहे। किन्तु जब बादल की दृष्टि शिविर के घटनास्थल की ओर गई, तो वह फिर तन्द्रा रहित हो गया।

"हाँ फूफा जी," बादल ने उत्तेजित होकर कहा—"वह लोग घेरा उठा रहे हैं; वह देखिये।"

बादल ने उँगली उठाकर उधर संकेत किया, जिधर स्फुट लोगों का दल छोलदारियाँ और खीमे उतार कर मोड़ने में लगा था। क्षण भर में यह बात सारी राजपूत सेना में फैल गई।

"अच्छा हुआ," भीमसिंह ने गम्भीर सन्तोष के साथ कहा—"अलाउद्दीन अब चित्तौड़ की शक्ति अच्छी तरह जान गया। परन्तु इधर तो देखो; कुछ नई ही चाल मालूम होती है।"

भीमसिंह ने शिविर से गढ़ की ओर आते हुए कुछ सवारों को लक्ष्य कर उपर्युक्त वाक्य का अन्तिम अंश कहा था। सब ने ध्यान से देखा, तो सवारों के साथ एक छोटा सफेद झण्डा उड़ता हुआ दिखाई दिया।

"अच्छा, यह सन्धि के लिये आ रहे हैं।" भीमसिंह ने कहा—"इन्हें भय है कि ऐसा न करने पर हम उनका पीछा करेंगे।

"नहीं फूफा जी" बादल ने कहा "उनकी संख्या हम से दस गुनी थी और अब भी इतनी अधिक है, कि मैदान में लड़ने पर हम उन्हें पराजित न कर सकेंगे। मुझे तो शान्ति-संदेश के साथ अलाउद्दीन का भी आना अच्छा नहीं मालूम होता। देखिये, उसकी सवारी भी दिखाई दे रही है।"

\+ \+ \+ \+

बादशाह और उसके साथियों ने देखा, कि भीमसिंह दुर्ग-द्वार पर खड़े हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो भीमसिंह ने एक घोड़े पर अब्दुल्लाखाँ को भी देखा। उसके दाहने हाथ पर पट्टी बँधी हुई थी। भीमसिंह ने कटाक्षपूर्वक उसकी ओर देख कर कहा—"ओ हो, मेरे दोस्त, अभी आप जीवित ही हैं। मैंने तो समझा था, कि आप जहन्नुम में पहुँच चुके होंगे।"

अब्दुल्लाखाँ ने क्रोध से काँपते हुए कहा;—अभी नहीं; मैं तुम्हें जहन्नुम पहुँचाये बिना कहीं न जाऊँगा।"

बादशाह ने कुछ कदम आगे बढ़ कर हाथ उठाते हुए कहा—"बस ! चित्तौड़पति, मैं सिर्फ यह बात कहने के लिये आया हूँ,

कि मैं अपनी बात रखता हूँ। मैं चित्तौड़ का घेरा उठाये देता हूँ।"

"ओ हो" भीमसिंह ने भर्त्सनापूर्ण स्वर में कहा—"आपकी बात भी आपके रण-कौशल की तरह निकम्मी है।"

अलाउद्दीन का चेहरा लाल हो गया। बड़ी कठिनाई से उसने अपने क्रोध पर नियन्त्रण किया।

"मैं इस समय तो घेरा उठाता हूँ; पर याद रखिये; मैं फिर आऊँगा !" बादशाह ने कहा।

"तो फिर आप का स्वागत होगा," महाराणा ने श्लेषपूर्ण हास्य के साथ कहा—"राजपूत आपका अपने कौशल से स्वागत करेंगे।"

सभी राजपूत सरदारों ने भीमसिंह की इस बात का स्वागत हास्य-पूर्वक किया। बादल ने ज़ोर का कहकहा लगाकर कहा—"यह कोई घेरा न था, सिकन्दर सानी; इसे अधूरा घेरा कहना चाहिये।"

\+ \+ \+

बादशाह ने इस राजपूत बालक के चेहरे की ओर देखकर कहा;—"तुम्हें बड़ों की बातचीत में दखल न देना चाहिये। तुम अभी बच्चे हो; जनानखाने में जा बैठो। जब मैं फिर आऊँगा तो तुम तातारी तलवार का वार सँभालने लायक हो जाओगे।"

बादशाह के साथी इस बात पर उठकर हँस पड़े और वह तुरन्त अपने घोड़ों के मुँह शिविर की ओर फेर कर तेज़ी से दौड़ा चले।

तातार बादशाह की अन्तिम बात से यद्यपि क्षण-भर के लिये भीमसिंह का भी मनोविनोद हो गया; पर पीछे जब उन्होंने बादल के उदासीन मुख की ओर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ, कि बात बादल के कलेजे में चुभ गई है। उन्होंने निकट जाकर प्रेमपूर्वक बादल की गर्दन पर थपकी दी।

"उसकी बात का खयाल न करो, बेटा! उसको तो तुमने सब से अधिक योग्यता के साथ रणक्षेत्र में छकाया है।"

भीमसिंह के प्रति बादल की अपार श्रद्धा थी। अपने रण-कौशल की प्रशंसा उनके मुँह से सुनकर बादल की उदासीनता दूर हो गई। वह पूर्ववत् वीर-भाव से भीमसिंह के साथ राजपूत सेना की ओर गया।

संघर्ष के पश्चात् जब शान्ति का समय आया करता है, तो क्षीण और खोई हुई शक्तियों को पुनर्प्राप्ति का दुर्लभ अवसर मनुष्य को सहज ही मिल जाता है। पिछले अङ्कों में जिस युद्ध का वर्णन हो चुका है; उसके पश्चात् कई वर्ष तक चित्तौड़ में शांति विराजती रही। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया; युद्ध में खोई हुई शक्तियाँ लोग फिर प्राप्त करते गये। तातारी घेरे के बाद चित्तौड़ की जो क्षति हुई थी; उसकी पूर्ति धीरे-धीरे होने लगी। इसमें सन्देह नहीं, कि जिन चुने हुए राजपूत योद्धाओं ने पिछले युद्ध में प्राणोत्सर्ग किये थे; उनका स्थान लेने को उन्हीं जैसे योद्धा चित्तौड़ को फिर प्राप्त न हो सके। राजपूती शान और स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा-रक्षा के लिये जिन वीरों ने हँसते-हँसते प्राण विसर्जन

किये थे; उनकी आन के सूरमा चित्तौड़ को उतनी जल्दी कैसे प्राप्त हो सकते थे? यद्यपि राजपूतों ने कहीं अधिक संख्या में तातार सैनिकों का बध कर डाला था; किन्तु इतने बलिदान के बाद उन्हें जो विजय मिली थी; वह कोई बहुत अधिक महत्त्व-शालिनी सिद्ध न हुई। प्रत्येक राजपूत कुटुम्ब अपने किसी-न-किसी प्रियजन के वियोग का विलाप कर रहा था। पत्नी पति के लिये, माँ बेटे के लिये, और बच्चे अपने पिता के लिये नित्य विलाप करते थे। केवल इनेगिने राजपूत योद्धा ही इस भीषण युद्ध में शेष रहे थे। जिन नवयुवक राजपूतों की रेखें अभी भिन्न ही रहीं थीं, उनमें वंशगत शौर्य अवश्य था; किन्तु अनुभव का अभाव था; और वह युद्ध-सम्बन्धी कठिनाइयों से भली-भाँति परिचित न थे।

इधर समय-समय पर दिल्ली से यह गुप्त समाचार चित्तौड़ पहुँच रहा था, कि बादशाह ने नये सैनिक भर्त्ती कर लिये हैं और वह चित्तौड़ पर फिर चढ़ाई करने के लिये सेना भेज चुके हैं; किन्तु हर बार यह समाचार कोरी अफवाह ही सिद्ध होता था, क्योंकि सेना के दिल्ली से इस ओर आने का कोई प्रमाण न मिलता था। इसका परिणाम यह हुआ, कि राजपूतों की यह आशङ्का धीरे-धीरे जाति रही, कि चित्तौड़ पर तातार सेना फिर आक्रमण करेगी। वह यही समझे कि अलाउद्दीन की पुनराक्रमण की बात निरी धमकी थी, और उसने यह बात अहङ्कार-प्रदर्शन तथा पराजय और असफलता की झेंप मिटाने के लिये ही कही थी।

किन्तु बादशाह अपनी बात भूला न था। हाँ, अन्य समस्याओं ने उसे इतना व्यस्त अवश्य बना दिया था कि बहुत दिनों तक वह इधर ध्यान न दे सका! किन्तु धीरे-धीरे जब उसकी उलझनें कम हुईं, तो उसे फिर पद्मिनी के सौन्दर्य और अपने पुनराक्रमण की प्रतिज्ञा याद आई। इसके बाद वह चित्तौड़ पर फिर चढ़ाई की व्यवस्था में लग गया।

पूर्ण और अबाधित शान्ति की गोद में खेलता हुआ चित्तौड़ शनैः शनैः अपने पूर्ववर्त्ती कष्टों को भूलकर सुख की साँस लेने लगा था। पद्मिनी पिछले घेरे के समय से प्रातःकाल पौ फटते ही अपने शयनागार से मिली खिड़की के पास आ बैठती थीं और नगर से दूर तक फैले हुए मैदान और पहाड़ियों की ओर देखा करती थीं। एक दिन उन्होंने इसी प्रकार दृष्टि दौड़ाते हुए एक असाधारण दृश्य देखा और उठीं। मैदान में बहुत दूर पर बादलों की भाँति उमड़ती हुई विशाल सेना की पंक्तियाँ आगे बढ़ती दिखाई देती थीं। ऐसा प्रतीत होता था, कि चित्तौड़ पर भयङ्कर तूफ़ान आ रहा है।

पद्मिनी अब प्रौढ़ता की ओर बढ़ रही थीं। यौवन के आरम्भिक विकास के समय उन्हें जो लावण्य प्रकृति ने प्रदान किया था; उसमें अब अधिक परिपक्वता आती जा रही थी। जिस सौन्दर्य पर बादशाह मोहित हुआ था; वह अब पूर्ण विकास पर पहुँच चुका था। इधर जो दुखद घटनायें हो गई थीं; उनसे यद्यपि पद्मिनी के चेहरे पर शोक-सन्तप्तता का एक चिह्न दृष्टि-

गोचर होता था; किन्तु उस भावना ने उसके सौन्दर्य को घटाने के बदले बढ़ाया ही था।

वह खिड़की के पास से उठकर शीघ्रतापूर्वक अपने पति की शय्या के पास गई। भीमसिंह अभी तक नींद के प्रभाव से मुक्त न हुए थे। उन्हें जगाकर पद्मिनी ने अप्रत्याशित और चौकाने वाला समाचार एक साँस में कह डाला। जिस अवसर का पद्मिनी को अर्से से भय था; वह आ पहुँचा। क्या चित्तौड़ तातारों की वर्द्धित शक्ति का मुक़ाबिला कर सकेगा? क्या एक बार फिर वह पहले ही की तरह रक्त की होली खेल सकेगा। भीमसिंह देर तक खिड़की के पास खड़े अधपकी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए देखते और विचारते रहे। उन्होंने सुविस्तृत मैदान के उस छोर से उमड़ते हुए टिड्डीदल के समान तातार सेना की ओर देखा। फिर थोड़ी ही देर बाद तम्बुओं की बड़ी भारी नगरी बसते देखा। इधर कई वर्षों में भीमसिंह में अनुभवजन्य बुद्धिमता की मात्रा काफी बढ़ गई थी। उन्हें एक बार तो ऐसा लगा; मानो पृथ्वी उनके पैरों के नीचे से सरक रही हो। वह जान गये, कि यह लड़ाई अन्तिम और निर्णायक होगी।

किन्तु कुछ ही क्षण बाद उनके चेहरे पर एक विलक्षण परिवर्त्तन हुआ। युद्ध का विचार आते ही उनकी भुजायें फड़क उठीं। उस समय उन्होंने यह विचार न किया, कि उनकी सेना के अधिकांश सैनिक बीस वर्ष से भी कम अवस्था के अनुभव-शून्य-नवयुवक हैं। भीमसिंह की अवस्था अवश्य बढ़ गई थी; किन्तु उनका

सैनिक शौर्य तनिक भी न घटा था; न उनके विचारों पर ही शैथिल्य का कुछ प्रभाव पड़ा था। उन्होंने जल्दी से जिरहबक्तर या कवच धारण किया और विशाल कक्ष से तत्काल प्रस्थान कर गए।

× × × ×

इस बार भी छः मास तक युद्ध भीषण रूप में चलता रहा। अलाउद्दीन ने किले के चारों ओर लोहिया घेरा घिरवा दिया और बाहर से चित्तौड़ आने वाली प्रत्येक वस्तु रोक दी। राजपूतों ने तातार-सेना की पंक्ति को भङ्ग करने का भरसक प्रयत्न किया; किन्तु उन्हें इसमें सफलता न मिली। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, राजपूत वीरों की संख्या भी कम होती गई। तातार सेना पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में चढ़ आई थी और राजपूत पहले की अपेक्षा संख्या में कम हो गये थे—फिर भी, वीर राजपूतों ने जिस बहादुरी के साथ उस विशाल तातार-सेना का मुकाबिला किया; उससे उनके परम्परागत शौर्य की प्रशंसा उनके शत्रु भी किये बिना रह न सके। अनेक बार अनेक स्थलों पर उन्होंने तातार सेना के छक्के छुड़ा दिये; किन्तु तातार सेना इतनी अधिक संख्या में थी, कि एक मोर्चे पर अपना पक्ष निर्बल होते देख दूसरी जगह के फालतू सैनिक वहाँ पहुँच जाते थे। राजपूतों के पास कोई भी नई कुमक न आ सकती थी। उन्हें तो चारों ओर से लोहिया घेरे के पिंजरे में बन्द हो जाना पड़ा था। पड़ोसी

राजपूत-राज्य और देश के समस्त हिन्दू सोते के सोते ही रह गये।

बादल अब बढ़ कर पूर्ण युवक बन चुका था। सेना में महाराणा के नीचे उसी का स्थान था। उसने बड़ी वीरतापूर्वक तातारों से लोहा लिय.; किन्तु इस बार उसे भी स्वीकार करना पड़ा, कि अलाउद्दीन ने अपनी पूर्वकालीन असफलता का बदला अच्छी तरह लिया है। बादशाह इस बार ऐसा दृढ़-संकल्प करके दिल्ली से चला था, कि किसी भी प्रकार की सुलह-समझौते की चर्चा को प्रोत्साहन न देगा। उसने एक ही शर्त्त रखी थी और वह यह, कि राजपूत बिना किसी शर्त के आत्म-समर्पण कर दें। किन्तु कुछ भी हो, राजपूत उस धातु के बने हुए न थे, कि झुकें और इस प्रकार की शर्त्त स्वीकार करें।

× × × ×

एक दिन प्रातःकाल भीमसिंह बादल को साथ लिये अपनी अवशिष्ट सेना का निरीक्षण दुःख और शोक भरे हृदय से कर रहे थे। उनके होंट चिपके हुए और भवें तनी हुई थीं। उनकी सेना के बड़े बड़े योद्धा स्वर्ग सिधार चुके थे। आज उनकी याद महाराणा को विह्वल कर रही थी। इसी समय सूर्य-पोल के रक्षकों में कुछ शोर हुआ। सभी सैनिक उधर ही दौड़ पड़े। वहाँ पहुँच कर उन सबने आश्चर्य पूर्वक देखा, कि कोई डेढ़ सौ गज के फासिले पर दुर्गवाली पहाड़ी की जड़ में उभरे हुए हिस्से पर शत्रु टोकरों में भर-भरकर मिट्टी डाल रहे हैं। लोग तरह-तरह

के अनुमान लगा रहे थे, कि शत्रु ने यह असाधारण कृत्य कैसे कर डाला। सभी रहस्य और सन्देह में पड़कर आँखें फाड़-फाड़ के देख रहे थे। राजपूतों के आक्रमण से काफी तङ्ग आकर तातारों ने महीनों में यह नई योजना बनाई थी, कि जिस पहाड़ी पर दुर्ग बना था; उसी के पास एक दूसरी समानान्तर बनावटी पहाड़ी खड़ी करके उसे ही अपने मोर्चे का केन्द्र बनाया जाय। इससे राजपूत तातार-सेना को उतनी हानि न पहुँचा सकेंगे, जितनी मैदान की सेना को पहुँचा सकते थे। उसके अतिरिक्त इस जगह मोर्चेबन्दी करके उस पर मुञ्जनिका या तुफङ्ग रखा जा सकता था, जिससे तातार सैनिक राजपूत-दुर्ग-रक्षकों पर आक्रमण करने और दुर्ग की दीवार को तोड़ने में अधिक आसानी से सफलता प्राप्त कर सकते थे।

कई सप्ताह तक आक्रमण इस कृत्रिम पहाड़ी से ही तुफङ्ग द्वारा होता रहा। धीरे-धीरे दीवार टूटने लगी। इस तुफङ्ग की मार से सारा दुर्ग थर्रा उठा। सारे चित्तौड़ में परेशानी और आतङ्क छा गया। भीमसिंह तातारों की इस नई युक्ति से घबरा उठे। वह समझ गये, कि यदि इस युक्ति से हमारा बाहरी मोर्चा टूट गया, तो चित्तौड़ की रक्षा असम्भव हो जायेगी।

× × × ×

भीमसिंह को इन दिनों रात में नींद न आती थी। युद्ध की स्थिति और चित्तौड़ के भविष्य पर विचार करते-करते सवेरा हो जाता था। एक दिन भीमसिंह ने तन्द्रावस्था में यह देखा, कि

उनके सिरहाने कोई मूर्त्ति खड़ी है। कुहनी पर सिर टेककर भीमसिंह उस मूर्त्ति की ओर एक टक देखते रहे। मूर्त्ति चित्तौड़ की गृहदेवी की थी। उसे देखकर भीमसिंह भय से काँप उठे।

"आपकी क्या आज्ञा है, माता? भीमसिंह ने भक्ति-मिश्रित भय से पूछा।

"मैं भूखी हूँ।" देवी ने भर्त्सना-भरे स्वर में उत्तर दिया।

"आप भूखी हैं?" भीमसिंह ने आश्चर्यपूर्वक कहा—"क्या आपकी तृप्ति अभी तक नहीं हुई? आठ हज़ार राजपूतों का रक्त पीकर भी आप अभी भूखी ही हैं!"

"नहीं, भीमसिंह," भवानी ने उत्तर दिया—"मैं साधारण राजपूतों के रक्त की भूखी नहीं हूँ। मुझे राजकीय रक्त चाहिये। जब तक बारह राजपूतों के मुकुट-मण्डित मस्तक बलि-वेदी पर न चढ़ जायें, तब तक मुझे सन्तोष नहीं हो सकता। इसके बाद मैं चित्तौड़ छोड़कर चली जाऊँगी और इस भूमि पर से तुम्हारे वंश का अधिकार उठ जायेगा।"

भीमसिंह गहरी वेदना से कराह उठे। उन्होंने देवी के मनाने की कोशिश की; किन्तु वहाँ कोई न था। आश्चर्यपूर्वक आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी शयनागार को उन्होंने बिल्कुल खाली पाया। इस पर वह दोनों हथेलियों से आँखें अच्छी तरह मल के देखने लगे। क्षीण दीपक का प्रकाश शयनागार में धीमी रौशनी फैला रहा था। पास ही पद्मिनी अपनी शय्या पर निद्रामग्न थीं। उनकी निद्रा की मुद्रा से थकावट झलक रही थी। कपोल पर

सूखी अश्रु-धारा के निशान बता रहे थे, कि कितनी गम्भीर वेदना से रो लेने के बाद उन्हें नींद आई थी।

चारों ओर दृष्टि दौड़ा चुकने के बाद भीमसिंह ने कहा—मालूम होता है यह एक स्वप्न मात्र था।"

× × ×

दूसरे दिन भीमसिंह अपने कार्य में जुट तो गये, पर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उनका शरीर किराये का हो। उनका मन पूर्ववर्त्ती रात्रि के प्रसंग से ऐसा भरा हुआ था, कि किसी भी बात की ओर ध्यान न जा रहा था। गृहदेवी की बातें उनके मन पर गहरी छाप छोड़ गई थी। किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने किसी से कोई बात न कही, न किसी से कोई राय ही ली। चुपचाप अपने मन पर लदे हुए इस बोझ को ढोते गये। उनके आज के उदासीनतापूर्ण भाव ने राजपूतों में सन्देह उत्पन्न कर दिया। वह महाराणा के इस मनोभाव का कुछ भी रहस्य समझ न सके। बादल ने भीमसिंह की इस बेचैनी को देख कर उसका कारण जानने का बहुतेरा प्रयत्न किया; किन्तु उसे सफलता न मिली।

उस रात जब भीमसिंह शयनागार में सोने के लिये गये, तो उन्होंने निश्चय कर लिया, कि यदि आज भी गृहदेवी के दर्शन हों, तो उनके चरणों पर गिर कर दया की भिक्षा माँगूँगा। किन्तु आधी रात को जब भवानी के दर्शन हुए, तो भीमसिंह को आत्म निवेदन का अवसर ही न मिला, क्योंकि देवी केवल इतना कह कर अन्तर्धान हो गई, कि अगली रात को सब राजपूत सरदारों

को बुला कर एक सभा करो। उस समय मैं अन्तिम बार आकर सबको अभीष्ट आज्ञा दे जाऊँगी।

प्रात:काल भीमसिंह ने सब राजपूत सरदारों को बुला कर रात की घटना सुनाई। सबके हृदय बोझ से दब गये और घबराहट से सबने शिर नीचे कर लिये। तातारों के विरुद्ध तो इन राजपूत वीरों ने अपना पूरा कौशल दिखाया था और उसे जारी रखने के लिये वह अब भी तय्यार थे; किन्तु देवी की इच्छा का विरोध वह कैसे कर सकते थे ? उनकी आज्ञा तो उन्हें बिना किसी आपत्ति के माननी ही होगी। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह सब कुछ गँवा चुके हों। परन्तु गृहदेवी की आज्ञा के विरुद्ध कौन ज़बान हिला सकता था ? चित्तौर इन दिनों अपने सम्पूर्ण शौर्य की आहुति दे रहा था; किन्तु इस आज्ञा से तो उस के राजवंश का विनाश सुनिश्चित सा हो गया। अब चित्तौर की रक्षा कौन कर सकता था ?

× × ×

जब अर्द्धरात्रि का समय निकट आया, तो राजपूत सरदार शयनागार में आ एकत्रित हुए। आसन्न-विपद् की छाया सबके नेत्रों शून्य को बना रही थी। सभी चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। सहसा अन्धकार की चादर में एक सूक्ष्म प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। राजपूतों की भयपूर्ण दृष्टि स्तम्भों के बीच में आगत देवी की ओर केन्द्रित हो गई। सभी राजपूत वीरों ने घुटने टेक कर शिर झुका दिये। इसी समय देवी का गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा—

"चित्तौड़ के वीरो ! यद्यपि हज़ारों यवनों से चित्तौड़ की भूमि पट गई है; किन्तु उससे मेरी क्षुधा शान्त नहीं हुई। न अब तक की राजपूतों की बलि से ही मैं तृप्त हुई हूँ। मैं गहनतर बलिदान चाहती हूँ; मैं उच्चतर त्याग चाहती हूँ। मुझे बारह राजकुमारों के मुकुट-मण्डित मस्तक चाहियें। क्रमशः एक-एक दिन एक-एक राजकुमार को राज्याभिषिक्त कर उसे पूरा अधिकार प्रदान किया जाये और वही उस दिन शत्रु से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हो। यदि इस आज्ञा का पालन किया गया तो चित्तौड़ विधर्मियों के हाथ में पड़ कर भी कभी-न-कभी क्षत्रिय राजकीय वंशधरों के हाथ आ सकता है; अन्यथा.....।" क्षण भर के लिए देवी का स्वर रुका; फिर भी, अधूरे वाक्य का अर्थ सबको स्पष्ट मालूम हो गया। अन्त में उसी कण्ठ स्वर ने कहा—"मैं आज्ञा दे चुकी; पालन करना तुम्हारा काम है।"

वीर क्षत्रिय सैनिकों के हृदय से गम्भीर वेदनायुक्त आह निकल पड़ी। उनका हृदय देवी की इस माँग से कटुतापूर्ण व्यथा से भर गया। जो अधिक साहसी थे; उन्होंने शिर उठा कर कुछ आपत्ति और उज्र की बातें कहनी चाहीं; किन्तु तब तक देवी अदृश्य हो चुकी थीं। परम्परागत किम्वदन्ती के अनुसार वह पहाड़ी की जिस गुफा में रहती थी; वहीं लौट गईं। उनकी दुःखद अतृप्ति राजपूतों के लिये काल के सदृश प्रतीत हुई।

× × ×

चित्तौड़ पर नियति के काले बादल घनघोर रूप में छा गये।

देवी की इस आज्ञा को सार्वजनिक रूप में घोषित कर दिया गया। बड़े-बड़े शूर-वीरों के चेहरों से निराशा टपकने लगी। उनकी उमंग पर पानी पड़ गया। हज़ारों राजपूत वीरों का बलिदान व्यर्थ गया। उन्होंने अपने प्राणोत्सर्ग कर अभी तक अपने गढ़ की रक्षा के जो प्रयत्न किये थे, आज वह सब व्यर्थ गये।

इस समय राजपूतों की जो मनोदशा हो रही थी; उसे जान कर यदि अलाउद्दीन तत्काल दुर्ग पर आक्रमण कर देता, तो उस की विजय सुनिश्चित थी। राजपूतों के दिल टूट चुके थे और उनमें ऐसे आक्रमण का मुकाबिला करने का साहस और शक्ति बाकी न रही थी। किन्तु बादशाह को राजपूती साहस का जो कटु अनुभव था; उसे देखते हुए इस प्रकार के समाचार का आभास मिलने पर भी वह एकाएक हमले का साहस न कर सका। उसने यही निश्चय किया था; कि बाहर से रसद पानी की आमद रोक कर ही चित्तौड़गढ़वासी राजपूतों को भूखों मार डालना सबसे सुगम और सफल उपाय होगा।

किन्तु इधर राजपूत भी उपर्युक्त प्रकार की निराशायुक्त भावना के बोझ से अधिक देर तक दबे न रहे। ऐसी साहसी जाति का साहस किसी भी भावना द्वारा स्थायी रूप से दबाया नहीं जा सकता था। उन्होंने अपना विनाश होने के पूर्व अधिकाधिक तातारों को यमालय पहुँचा देने का दृढ़-संकल्प किया। मरने से पहले कितनों ही को समाप्त कर देना राजपूत जाति का मूल-मन्त्र था।

इसके पश्चात् बारह राजकुमारों में कौन किस क्रम से पद-प्राप्त कर बलिदान की तय्यारी करे; इस पर विचार आरम्भ हुआ। विशाल कक्ष में महाराणा के सम्मुख सरदारों के बीच में इस प्रश्न पर विचार होने लगा। प्रत्येक उम्मीदवार प्रथम बलिदान बनने का दावा करने लगा। पहले-पहल सब से बड़े राजकुमार उरसिंह ने भीमसिंह के सामने जाकर कहा—"मेरा जन्म पहले हुआ है; अतः पहला बलिदान बनने का अधिकार भी मुझे है। मुझे ही मुकुट पहनाइये।"

चित्तौड़ अब एक प्रकार से विधवा हो चुका था। फिर भी, राजकुमार उरसिंह का राज्याभिषेक धूमधाम से हुआ। इसमें सन्देह नहीं, कि इस तिलकोत्सव में आसन्नशोक की भयङ्कर छाया अपनी छाप स्पष्ट दिखा रही थी। फिर भी, परम्परागत राजकीय प्रणाली के अनुसार छत्र, चामर और राजकीय चिह्नों से संयुक्त कर उरसिंह को रक्त-तिलक किया गया और राज्याधिकार घोषित किया गया। इसके बाद राजकुमार ने तीन दिनों तक व्रतोपवास कर चौथे दिन प्रातःकाल आत्मबलि की तय्यारी कर दी। उनके साथ बहुत से राजपूत योद्धा भी तय्यार हुए। नये महाराणा उरसिंह देवी को साष्टाङ्ग नमस्कार कर प्रस्थान के लिये प्रस्तुत हुए। पुरोहित ने केसरिया बाना धारण करने वाले क्षत्रिय वीरों को आशीर्वाद देकर एक प्रकार का आसव पिलाया। सब ने यह मादक भरपेट पिया। फिर अपने अपने घोड़ों पर सवार हो वह सूर्यपोल की ओर रवाना हो गये।

× × × ×

महाराणा उरसिंह ने अपने साथी राजपूत वीरों पर गर्वपूर्ण दृष्टि डाली। "हम लोग लड़ते लड़ते प्राण विसर्जन कर देंगे।" उन्होंने अपने सहचरों को सम्बोधन कर कहा—"किन्तु जिन्हें अपने बाल-बच्चों का मोह हो, वह अब भी लौट जा सकते हैं।"

गम्भीर निस्तब्धता छा गई। फिर सब ने हाथ उठाकर सैनिक अभिवादन किया और इसके पश्चात् सब के हाथ अपने-अपने भालों पर पहुँच गये। दरवाजा खोल दिया गया और एक ही भावना से उद्वेलित प्रत्येक सैनिक ने एक-एक कर अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। उरसिंह सब से आगे थे। अश्वारोही सेना की यह पंक्ति सीधी तातार सेना की ओर बढ़ी।

इधर भीमसिंह चिन्तित-भाव से किले के कङ्गरे से यह दृश्य देख रहे थे। बादल भी उनके पास ही था। पांच सौ घुड़-सवारों की यह सेना बात की बात में तातार सैन्य दल के पास जा पहुँची और सामने जो कोई आया; उसी को काटती हुई तातार सेना के बीच में जा पहुँची। इस अप्रत्याशित और आकस्मिक आक्रमण से तातार सेना में खलबली मच गई।

× × × ×

राजपूत घुड़ सवारों के आक्रमण से एक बार तो तातार सेना तितर-बितर हो गई, किन्तु जब उसने देखा, कि राजपूतों की संख्या सीमित है, तो वह फिर कर एकत्रित हो गई और आक्रमण का मुकाबिला करने को तय्यार हो गई। चित्तौड़गढ़ के कङ्गरों से

सङ्घर्ष की आवाज़ सुनाई दे रही थी। सहस्रों राजपूत दुर्ग से ही तातार-शिविर का यह सहर्ष उत्सुक और चिन्तित भाव से देख रहे थे।

यद्यपि राजपूत आक्रमणकारियों ने अप्रतिम शौर्य दिखा कर यवनों का संहार बड़ी संख्या में किया; किन्तु अन्त में सहस्र तातार सैनिकों के दल ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। राजपूत सैनिकों की संख्या कम होने लगी। राजकुमार उरसिंह घायल हो गये और उनका घोड़ा भी काम आ गया। फिर भी, वह उसी अवस्था में दृढ़तापूर्वक खड़े रहे। उनके शरीर पर सत्ताईस गहरे जख्म आये थे। उनके आस-पास थोड़े से राजपूत योद्धा बाकी बचे थे। सामने ही अलाउद्दीन था। उसने इन मरणासन्न वीरों से कहा, कि अब विरोध करना व्यर्थ है; अतः आत्म-समर्पण कर देने में ही उनका कल्याण है; किन्तु उरसिंह और उनके साथी वज्र के बने हुए थे। वह जीवित रहते आत्म-समर्पण कब कर सकते थे? 'चित्तौड़ की जय' नाद करते हुए अन्त में उन्होंने शत्रुओं के विशाल सैन्य-दल पर आक्रमण किया और इस प्रकार अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक शौर्य-प्रदर्शन कर सूर्य-लोक वेध के स्वर्ग-गामी हुए।

× × × ×

इस प्रकार राजपूत वीरों का पहला दल देवी की रक्त-पिपासा शान्त करने के लिये बलि चढ़ गया। इसी प्रकार हर चौथे दिन एक-एक राजकुमार अभिषिक्त होकर पांच-पांच सौ राजपूत सैनिकों

के साथ तातार सेना पर आक्रमण करता और अपने से दूनी-चौगुनी शाहीसेना का नाश कर विनाश को प्राप्त होता था। मरने के पहले प्रत्येक राजपूत-दल तातार सेना में घुस कर आफत ढा देता था। उसे मृत्यु का भय तो था ही नहीं; फिर मरने से पहले वह शत्रु-दल को विरोध का पूरा मज़ा क्यों न चखा दे। इस संघर्ष के परिणाम-स्वरूप सारे चित्तौड़ में मातम छा गया। अन्त में पांच सौ सैनिकों के साथ बारहवें राजकुमार भी अभिषिक्त होकर रणक्षेत्र में गये और भवानी की भूख के अन्तिम ग्रास बन गये। अब कुल मिला कर पांच हज़ार राजपूत चित्तौड़गढ़ की रक्षा के लिये बाकी रह गये। यह पांचो सहस्र भीमसिंह के साथ प्राण निछावर करने के लिये ही अभी तक जीवित थे। भीमसिंह के प्रति उनकी अपूर्व और दृढ़ श्रद्धा थी।

× × × ×

महल के एक विशाल कक्ष में इस अन्तिम और सङ्कटपूर्ण अवसर पर प्रमुख राजपूत सरदार उपस्थित थे। उरसिंह के बाद दूसरे राजकुमार अजयसिंह को युद्ध के लिये जाना चाहिये था; किन्तु अत्यधिक प्यार के कारण महाराणा भीमसिंह ने उन्हें अन्त के लिये रोक लिया था। अब अन्तिम युद्ध का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये अजयसिंह ने अपना दावा पेश किया। उनके भाई अपना रण-कौशल दिखाते हुए वीरगति को प्राप्त हो चुके थे; ऐसी दशा में अजयसिंह के रोकने का अवसर तो नहीं था; किन्तु भीमसिंह ने प्रेम और दुःख के मिश्रित भावों से अपने सर्वप्रिय पुत्र अजयसिंह की ओर देखा।

"नहीं बेटा" भीमसिंह ने उनसे कहा—"अन्तिम युद्ध के नेतृत्व का अधिकारी मैं हूँ। अपने नगर की मुक्ति के लिये मैं ही अन्तिम प्रयत्न करूँगा। तुम्हें तो बच निकलने की आवश्यकता है, जिससे चित्तौड़ पुनः अपने राजवंशीय अधिकारी के अधिकार में आ सके। अपने साथ अपने भतीजे उरसिंह के पुत्र हमीर को भी बचा कर निकाल ले जाना। यदि संयोगवश तुममें एक मारा भी जाय, तो दूसरे से मेरे वंश की रक्षा हो जावेगी और उसके द्वारा एक दिन फिर चित्तौड़ पर राजपूतों की ध्वजा उड़ेगी। मेरे वीर सरदारो! मेरी बात ठीक है न?"

"बिल्कुल ठीक!" सब सरदारों ने एक स्वर से कहा—"हम सब तो आप के ही साथ लड़ मरने को तय्यार हैं।"

× × ×

भीमसिंह के मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की आभा थी और अजयसिंह का मुख म्लान था। चित्तौड़ के महापराक्रमपूर्ण नाटक में अन्तिम शौर्य दिखाने की उनकी अभिलाषा मन ही में रह जाने की योजना उनके पिता ने बना ली थी और पिता की आज्ञा टाली न जा सकती थी। अजयसिंह मन मसोस कर रह गये। भीमसिंह अपने पुत्र की मनोदशा ताड़ गये।

"बेटा" उन्होंने प्रेमपूर्वक फुसलाने के स्वर में कहा—"तुम निराश हो गये हो; किन्तु चित्तौड़ के सरदारों ने जिस बात की स्वीकृति दे दी है; वह बदली नहीं जा सकती। इतने सरदारों और पिता की आज्ञा मानना तुम्हारी कायरता न समझी जायेगी।

तुम सैनिक हो; आज्ञापालन तुम्हारा धर्म है।"

इसके पश्चात् महाराणा ने अपनी कमर से अपने पूर्वजों की तलवार खोलकर अजयसिंह की कमर में बाँधते हुए कहा—"मैं मेवाड़ की यह पवित्र तलवार तुम्हें सौंपता हूँ। इस कृपाण का निर्माण महामन्त्रों का स्तवन करते हुए स्वयं विश्वकर्मा ने किया है। इसे हमारे पूर्वज बाप्पा रावल की कमर में स्वयं भवानी ने बाँध दिया था। इसकी रक्षा चित्तौड़-राजवंश की पवित्र धरोहर के रूप में करना।"

भीमसिंह की आज्ञा और कृपाण की महत्ता की गौरवपूर्ण बातें सुन कर राजकुमार अजयसिंह ने घुटने टेक कर अपने पिता की चरणधूलि माथे पर लगा ली।

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है पूज्य पिता जी" अजयसिंह ने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—"यद्यपि मुझे भाग निकलने का गौरव-शून्य कार्य सौंपा गया है; किन्तु मैं भगवान् एकलिंग की शपथ लेकर कहता हूँ, कि मैं केवल चित्तौड़ की गौरव-रक्षा और अपने वंश की शृङ्खला कायम रखने के लिये ही जीवित रहूँगा।

"धन्य वत्स, धन्य!" भीमसिंह ने आह्लादपूर्ण नेत्रों से पुत्र की ओर देखकर कहा। सभी सरदार अजयसिंह की बात से प्रसन्न हो रहे थे।

"भवानी तुम्हें सफलता देंगी" भीमसिंह ने पुत्र को उठाकर आलिंगन किया और अपने आँसू पोंछते हुए कहा—'मैं अब भवानी के चरणों में आत्मसमर्पण करने जा रहा हूँ।"

× × ×

"प्राणनाथ !" उस विशाल-कक्ष के एक छोर से क्षत्राणियों के साथ प्रवेश करती हुई पद्मिनी ने मधुर स्वर में सम्बोधन किया—"क्या पुरुषों की सभा में स्त्रियों को भी कुछ कहने का अधिकार है ?"

सब सरदारों की दृष्टि घूँघट से आवृत्त महिलाओं की ओर गई। बहुतेरे सरदारों ने पद्मिनी के पीछे खड़ी अपनी-अपनी पत्नियों को पहचान लिया। किन्तु किसी सरदार के भी होंठ न हिले। सब महाराणा के उत्तर की प्रतीक्षा करते रहे।

"पधारो महारानी" भीमसिंह ने स्वागत पूर्वक कहा—"अपनी सहचारियों सहित पधारो। चित्तौड़ को महिलाओं के परामर्श की आवश्यकता है।

इसके पश्चात् निस्तब्धता छा गई। महारानी अपनी सहचरियों सहित निकटतर आकर खड़ी हो गई।

"मेरे स्वामी !" पद्मिनी ने साहसपूर्वक महाराणा से कहा—"मैंने सुना है, कि चित्तौड़ का बिनाश निकट है ?"

"हाँ, निकट है !" महाराणा ने गम्भीर स्वर में कहा।

"तो फिर।" पद्मिनी ने आधा रुख महाराणा की ओर और आधा स्त्रियों की ओर करते हुए कहा—"पति की मृत्यु के बाद क्या कोई क्षत्राणी जीवित रहती है ? चित्तौड़ की महिलायें जौहर-व्रत की अधिकारणी हैं। कैद और भ्रष्ट होने के विचार से ही प्रत्येक क्षत्राणी के रोम-रोम में आग लग जाती है।"

पद्मिनी के उत्साहजनक शब्दों से सभी राजपूतों की बाछें खिल गईं। सबके मुँह से प्रशंसात्मक ध्वनि निकल गई। अगले जन्म में पति-पत्नी के पुनर्मिलन की सुखपूर्ण भावना ने सबके मन पर अधिकार जमा लिया। यह स्त्रियों का पति के प्रति चरम विश्वास और भक्ति का प्रस्ताव था। पुरुष भला स्त्रियों को जौहर-व्रत से रोक ही कैसे सकते थे। महारानी ने देखा, कि इस प्रस्ताव से बादल का मुख-मंडल गर्व से प्रदीप्त हो उठा। उन्होंने उसकी ओर रुखकर मृदुतापर्ण स्वर में कहा—"प्यारे बादल, चित्तौड़ के इस परिवर्त्तन-काल में आरम्भ से अन्त तक तुमने हमारा साथ दिया है। इस अन्तिम और भयानक घड़ी में मैं तुम से कुछ चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि तुम इसे स्वीकार करो।" और अपने हाथ से सोने का कड़ा निकालकर बादल के हाथ में पहनाते हुए कहा—"आज से तुम मेरे राखीबन्द भाई बने। मुझे पूर्ण आशा है, कि तुम इस सम्बन्ध को स्थिर रखोगे और मेरी तथा चित्तौड़ की स्त्री-जाति की रक्षा प्राणपण से करोगे।"

सभी सरदारों को इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई। सभी बादल की वीरता के कायल थे और उसकी प्रतिष्ठा को वीरता की मर्यादा समझते थे। बादल को सभी इस पद के योग्य समझते थे। चित्तौड़ में ऐसा कोई युद्ध नहीं हुआ, जिसमें बादल ने सब से पहले मोर्चा न लिया हो। लड़कपन से ही जिस विलक्षण बुद्धि और रण-नैपुण्य से बादल ने चित्तौड़ की प्रतिष्ठा-रक्षा की थी, उसके लिये चित्तौड़ उसका चिर-कृतज्ञ था। यद्यपि यह

प्रतिष्ठा महाराणा के पौत्र को मिलनी चाहिये थी; किन्तु बादल की सक्रियता ने इस समय उसे ही इस प्रतिष्ठा का सर्वश्रेष्ठ पात्र बना दिया था।

इस आदर से बादल आत्मविभोर हो घुटनों के बल महारानी पद्मिनी के सम्मुख बैठ गया। पद्मिनी ने उसके मस्तक पर हाथ रख दिया। बादल ने गद्‌गद् कण्ठ होकर कहा—"अपने रक्त की अन्तिम बूँद बहाकर भी बादल आपकी और समस्त चित्तौड़ की स्त्री-जाति की रक्षा करेगा।"

× × × ×

इस घटना के चौथे दिन प्रातःकाल राजकुमार अजयसिंह अपने साथ उरसिंह के पुत्र हमीर तथा चुने हुए घुड़सवारों को लेकर पद्मपोल से निकले। तातारों का दल उस दिन सदा की भाँति सूर्यपोल के बाहर एकत्रित हुआ था। ऐसी अवस्था में पद्मपोल के बाहर तातारों की ओर से साधारण पहरे के अतिरिक्त कोई विशेष सतर्कता न थी। राजपूतों ने बुर्जों से देखा, कि अजयसिंह अपने घुड़सवार योद्धाओं के साथ तीव्र वेग से मैदान की ओर बढ़ रहे हैं। क्षण भर में इस दल ने तातार पहरेदारों को काट डाला और वह उसी गति से घोड़े दौड़ाते हुए पहाड़ियों के बीच से कैलवाड़े की ओर चला गया।

भीमसिंह ने अब सन्तोष की साँस ली। उन्हें निश्चय हो गया कि अब उनके वंश की लड़ी न टूटेगी; उसकी अन्तिम कड़ी सुरक्षित रूप में अपना विस्तार कर सकेगी। उन्होंने अपने पास खड़े

हुए बादल से कहा—"अब हमारा अन्तिम समय आ गया है। जीवन में कोई सौन्दर्य बाकी नहीं रहा है। आज दोपहर को हम अलाउद्दीन पर अन्तिम आक्रमण करेंगे और उसी में अपने प्राण विसर्जन कर देंगे।"

"अवश्य ही महाराणा। भगवान् करें मैं अलाउद्दीन से भिड़ के दो-दो हाथ चला सकूँ।" बादल ने कहा।

× × × ×

मध्याह्नकालीन तप्त-सूर्य की किरनें राजपूतों की उमङ्गों की उष्णता को और भी बढ़ा रही थीं। आज चित्तौड़ के समस्त अवशिष्ट योद्धा मन्दिर के सामने शस्त्र धारण किये हुए एकत्रित हो रहे थे। आज चित्तौर के सभी व्यापारी, मज़दूर, पुरोहित और साधु एकत्रित होके अपने रक्षकों को अन्तिम बिदा देने जा रहे थे। पहले शंखनाद हुआ। फिर मारू बाजा बजा, जो भावी मृत्यु का सन्देश देकर कमज़ोरों और वृद्धों को चित्तौड़ में ही रोक रहा था। सभी योद्धाओं ने केसरिया बाना धारण कर रखा था। पुरोहित प्रमुख सैनिकों के समक्ष आकर आशीर्वचन कहते हुए उन्हें सोमरस पिला रहे थे। संसार में इन समरोन्मुख क्षत्रियों का यही अन्तिम पेय था।

अब कई सहस्र क्षत्रियों का यह अन्तिम जलूस युद्ध-यात्रा के लिये उद्यत हुआ। इस समूह में अधिकांश वयस्क क्षत्रिय वीर थे। उधर अन्तःपुर से अन्तिम बिदा लेकर महाराणा भीमसिंह और बादल इस दल का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये प्रस्थानोन्मुख

हुए। उनके साथ राजघराने के कुछ प्रमुख योद्धा भी थे।

× × × ×

उधर अन्त:पुर में महारानी पद्मिनी अपनी प्रधान सहेलियों के साथ दर्वाजे पर खड़ी हो गई और असंख्य क्षत्राणियाँ उस विस्तृत आँगन में प्रवेश करने लगीं, जहां चन्दन-काष्ठ की विशाल चिता लगाने की व्यवस्था पहले ही से की गई थी। जिस दृढ़ता से राजपूत वीरों के पग समर-भूमि की ओर बढ़ रहे थे, उसी साहस और गौरव के साथ क्षत्राणियों के पग भी चिता-भूमि की ओर अग्रसर हो रहे थे। जब सभी महिलायें अन्त:पुर के उस विशाल आँगन में पहुँच गईं, तो अन्त में महारानी ने भी अन्दर प्रवेश किया।

अन्दर पहुँच कर महारानी बाहर की ओर मुँह करके खड़ी हो गई। भीमसिंह, बादल तथा अन्य क्षत्रिय वीरों ने उन की ओर देखा। पद्मिनी की समस्त पूर्ववर्त्ती चिन्तायें लुप्त हो चुकी थीं। आज उनके मुख-मंडल पर एक अलौकिक तेज प्रदीप्त था। उनका आज का सौन्दर्य आत्मिक-शान्ति और आधिभौतिक आह्लाद का द्योतक था। मानो जीव बन्धनमुक्त हो ब्रह्म में लीन होने जा रहा हो। सबने इस विरुद्ध आध्यात्मिक प्रकाश को पद्मिनी के मुखमंडल पर देखा। सब आश्चर्य श्रद्धा और पवित्र भावनाओं से प्रेरित होके देर तक उस स्वर्गीय आकर्षण से परिपूर्ण मूर्ति की ओर अनिमेष लोचन से देखने लगे।

अन्त में पद्मिनी ने देर तक अपने स्वामी के मुख-मण्डल को इस प्रकार देखा जैसे वह कुछ स्मरण कर रही हों।

"स्वामी," उन्होंने अत्यन्त मधुरकण्ठ से महाराणा को सम्बोधन कर कहा—"वियोग का क्लेश व्यर्थ है, क्योंकि वियोग हो ही नहीं रहा है। सन्ध्या होने के पूर्व ही हम उस स्वर्गलोक में फिर मिलेंगे, जहाँ अनन्त शान्ति विराजमान है।" फिर मधुर एवं स्वर्गीय मुस्कान के साथ उन्होंने अन्य सैनिकों से कहा—'मेरे राखीबन्द भाई और सरदारो; आप भी हमारे सहचर बनेंगे।"

वीर होते हुए भी बच्चों का सा स्वच्छ और कोमल हृदय रखनेवाले राजपूतों के हृदय से इस ऐहिक-विच्छेद के दुःख से एक आह निकल पड़ी। फिर भी, क्षत्रियोचित साहस ने विषाद की मात्रा का अतिक्रमण न होने दिया। सहसा भीमसिंह के हृदय में ऐसी अलौकिक भावना उत्पन्न हुई, जैसी उनके जीवन में कभी न हुई थी। उन्हें एकाकीपन का भान हुआ।

× × × ×

"विदा, मेरे स्वामी और सरदारो; हम फिर मिलेंगे।" कहकर पद्मिनी ने ज्वलनोन्मुख चिताओं की ओर मुँह फेरा।

भीमसिंह ने भी अपने हृदय की कोमलता को छिपाने के लिये उधर से मुँह फेर लिया। इस प्रकार असाधारण साहस और मनोनिग्रह-पूर्वक दम्पति ने इस भौतिक विच्छेद को सहन किया। महाराणा, और बादल प्रमुख क्षत्रिय वीरों सहित मन्दिर के सम्मुख आ राजपूत सेना में मिल गये। सूर्यपोल खुला। प्रस्थान का डङ्का बज उठा।

× × × ×

"चित्तौड़ की जय" के गगनभेदी नारों से तातार-सेना चौकन्नी हो उठी। अलाउद्दीन ने सुदृढ़ भाव से आगे बढ़ती हुई राजपूत सेना को भय और प्रशंसा की दृष्टि से देखा।

"वल्लाह!" बादशाह ने अपने प्रधान सेनापति अब्दुल्लाखां से कहा—"यह लड़ाई नहीं; यह तो मौत पर फ़तेह पाने का मर्दाना खेल है।"

वास्तव में यह युद्ध राजपूत जाति के उत्साह, निर्भयता और उत्सर्ग का दिव्यतम निदर्शन था। यह उस चिंगारी के सदृश था, जो बुझने तक अपनी प्रज्वलनशीलता को अक्षुण्ण रखती है। भीषण संघर्ष था। वीरों की हुंकार और अस्त्र-शस्त्र की झंकार से सारा वायुमंडल प्रकम्पित हो उठा। एक-एक राजपूत को तातारों की टोली की टोली ने घेर लिया किन्तु जिस ओर राजपूत तलवार लेकर पिल पड़ते; उधर मैदान साफ़ नज़र आता था। आमने-सामने की लड़ाई में युद्ध-कौशल पर निर्भर रहने वालों और छल-छिद्र के भरोसे विजय प्राप्त करने वालों की अक्ल एक बार तो हवा खाने चली जाती है; पीछे चाहे उनकी विपुल संख्या भले ही उन्हें सफल बना दे। यही हाल इस राजपूत-तातार-संघर्ष का था। राजपूतों की संख्या शाही सेना के मुकाबिल नगण्य थी; किन्तु उन्होंने इतने तातारों का बध किया, कि चित्तौड़ का पार्श्ववर्त्ती मैदान एक विशाल शवागार-सा जान पड़ने लगा।

भीमसिंह अपने प्रबल पराक्रम से बीच में आने वाली तातार-सेना को घास की तरह काटते हुए अन्त में युद्धक्षेत्र के उस मध्य-

वर्त्ती भाग में पहुँच गये; जहां अलाउद्दीन अपने प्रधान सेनापति और अंग-रक्षक मुसाहिबों के बीच खड़ा था।

"कायर तातार" भीमसिंह ने क्रोधपूर्वक गर्जन कर कहा—"इस प्रकार मुँह छिपा कर क्यों खड़ा है; आगे बढ़ कर मर्द की तरह लड़; स्त्रियों की भांति सैनिकों की आड़ में क्यों खड़ा है?"

अब्दुल्लाखां ने यह ललकार सुनी, तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर आगे बढ़ा। उसकी आंखें लाल हो गई और होंट फड़कने लगे। उसने देखा, कि भीमसिंह के पास बादल पूरे शौर्य से लड़ रहा है और रक्त से लतपत हो गया है। उस के चारों ओर लाशों के ढेर लगे हैं।

\+ \+ \+

"मैं आ रहा हूँ"-शाही फौज के प्रधान सेनापति अब्दुल्लाखां ने भीमसिंह से डपटकर कहा और उछल कर उनके सामने आ गया। दोनों ने घोर घृणा से एक दूसरे की ओर देखा। दोनों ही दल के योद्धा युद्ध रोक यह द्वन्द्व देखने लगे। दोनों की तलवारें चमकीं और पैंतरे शुरू हो गये। भीमसिंह ने एक जबर्दस्त हाथ अब्दुल्ला की छाती पर मारा; किन्तु तातार-सेनापति ने जिरह-बक्तर पहन रखा था, जिससे एक ज़ोरदार ठनाका हुआ और अब्दुल्ला उस राजपूती आक्रमण के वेग को न संभालने के कारण धराशायी हो गया। फिर भी लौह-कवच के कारण उसे अधिक चोट नहीं आई। महाराणा आगे बढ़ कर उस पर दूसरा वार करने वाले थे;

किन्तु अब्दुल्ला उठने के बदले चक्कर खाकर द्रुतवेग से घुटनों के बल बैठ गया और एकाएक उछलकर भीमसिंह के गले में तलवार भोंक दी। इधर भीमसिंह ने इसी बीच में बिजली की भांति तलवार का एक हाथ अब्दुल्ला के गले पर ऐसा मारा, कि वह फिर धराशायी हो गया और फिर न उठा। साथ ही भीमसिंह भी धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े। तातार की तलवार भी अपना काम कर चुकी थी।

इस अप्रत्याशित अन्त को देख कर बादल अधीर हो उठा। वह दौड़ कर भीमसिंह को संभालने लगा। उसने उनके चेहरे को देखा, तो मालूम हुआ, कि अब वह कुछ ही छण के मेहमान हैं। भीमसिंह ने इशारे से बादल को अपने मुँह के पास कान ले जाने का आदेश किया। बादल उनके पास जाकर झुका। भीमसिंह ने अस्फुट स्वर में यह अन्तिम शब्द कहे—"दरवाज़े की रक्षा करो। स्त्रियों को जौहर-व्रत पूर्ण करने का समय दो। विदा...हम फिर मिलेंगे।"

इसके बाद ही चित्तौड़ का वह महाप्रतापी सूर्य अस्त हो गया। बादल परम शोकाकुल होता हुआ भी क्षण भर विलम्ब किये बिना महाराणा की अन्तिम आज्ञा पालन करने को चला। उसने अपने पार्श्ववर्त्ती राजपूत वीरों को एक प्रकार का इशारा किया और इस प्रकार राजपूत दल पैदल लड़ता हुआ धीरे-धीरे सूर्यपोल की ओर लौटने लगा।

जब यह अन्तिम राजपूत दल लड़ता-लड़ता सूर्यपोल पहुँचा;

तो द्वारपाल ने बादल से पूछा—"क्या फाटक खोल कर अवशिष्ट क्षत्रिय वीरों को अन्दर ले लिया जाय ?"

"नहीं !" बादल ने उच्च और कठोर स्वर में कहा—"हम लड़ते-लड़ते मरेंगे; तातार हमारी लाशोंपर से ही आगे बढ़ सकेंगे ।"

सूर्यपोल पहुँचने तक केवल मुट्ठी भर राजपूत वीर शेष रहे थे। उन्होंने अपने रक्त की अन्तिम बून्द बहा देने तक तातार-सेना को दुर्ग की ओर बढ़ने से रोका। बादल उन सबसे आगे था। उसने उमड़ते हुए तातार-दल को अद्भुत पराक्रम से घण्टों तक तिलभर भी आगे न बढ़ने दिया।

× × × ×

इन इने-गिने राजपूतों की यह दृढ़ता देखकर अलाउद्दीन आगे बढ़ा और झल्ला कर बोला—"अब तुम्हारी कोशिश फिजूल है, बादल ! इतनी बहादुरी के साथ लड़ने के बाद हार मान लेने में कोई हर्ज़ नहीं ।"

"नहीं दिल्लीपति" बादल ने भर्त्सनापूर्वक कहा—"मेरे जीते-जी तुम किले में प्रवेश नहीं कर सकते ।"

"तो फिर मरो ।" कह कर बादशाह आगे बढ़ा और बादल पर तलवार का प्रबल प्रहार किया। किन्तु गिरते गिरते भी बादल ने एक ऐसा हाथ अलाउद्दीन पर जमा दिया, जिस से उस की बांह में गहरा ज़ख़्म आया।

"पद्मिनी...की...जय !" मरणोन्मुख वीर बादल ने क्षीण स्वर में कहा।

अब कोई भी राजपूत योद्धा शेष न रहा था। तातार-दल ने अब सारी शक्ति फाटक तोड़ने में लगा दी। इस कार्य में यद्यपि काफ़ी समय लग गया, फिर भी शाही सेना को सफलता अवश्य मिली। युद्धोन्मत्त तातार-सेना फाटक के टूटते ही रिक्त महल की ओर दौड़ पड़ी। अलाउद्दीन सब सैनिकों को महल के विशाल कक्ष की ओर छोड़ स्वयं अन्तःपुर की ओर लपका। उसके पीछे-पीछे कुबड़ा हाफ़िज़ भी आगे बढ़ा। अलाउद्दीन जब अन्तःपुर के दरवाजे के निकट पहुँचा, तो देखा कि चिताओं का विशाल समूह धायँ-धायँ जल रहा था और धुएँ की अधिकता और अग्निताप के कारण वहां ठहरना भी असम्भव था। उसे मालूम हो गया कि राजपूत रमणियां चिता में भस्म हो गईं। उसने इधर-उधर दाहिने-बायें भी दृष्टि दौड़ाई—किन्तु उसे कहीं चिड़िया का पता भी नज़र न आया। उसके हृदय को जैसे एक ज़बर्दस्त धक्का लगा। और किसी अज्ञात भय से वह कांप उठा। उसने फ़ौरन मुँह मोड़ लिया और वहां से बेतहाशा पीछे की ओर भागा। थोड़ी ही दूर लौटने पर उसने देखा—कुबड़ा हाफ़िज़ चुपचाप उसकी ओर आ रहा था।

बादशाह के आतङ्क और अन्तर्दाह पर जले पर नमक की तरह कुबड़े ने व्यङ्ग-बाण छोड़े।

"हिन्दुस्तान के बादशाह होकर भी आप को यह पता न था, कि राजपूत औरतें अपने खाविन्द के मरने पर जीना हराम समझती हैं। जिस खूबसूरती पर आप लट्टू थे वह राख में मिल

गई। आप को ज़नानखाने से उठता हुआ धुएँ का बादल भी दूर से न दिखाई दिया । आप वहां क्या लेने गये थे ?" इस पर चोट खाये हुए खूँखार भेड़िये की तरह अलाउद्दीन ने तलवार का एक हाथ ऐसा मारा, कि बेचारा कुबड़ा धराशायी हो गया। मौत की यन्त्रणा से तड़पते हुए उसने अलाउद्दीन को अभिशाप देना शुरू किया—"तेरा सत्यानास हो जायगा । तू कभी सुख न पायेगा। तूने पद्मिनी जैसी देवी पर बुरी नज़र डाली थी—तुझे दोज़ख में भी जगह न मिलेगी। मुझे मालूम था, कि वह देवी तेरे जैसे वहशी बदकार के हाथ न आयेगी—अगर मुझे इस बात में ज़रा भी शक होता, तो मैं तुझे ज़हर दे देता।...फ़तेह तेरी नहीं, राजपूतों की हुई है। वह मरकर भी ज़िन्दा हैं और तू जीते-जी भी मुर्दा है। तेरी रूह कयामत तक तड़पती रहेगी; तू ताज़िन्दगी बेकरार रहेगा..."

अलाउद्दीन ने एक और प्रहार कर कुबड़े का काम तमाम कर दिया।

× × × ×

इस प्रकार लाखों तातार सैनिकों का रक्त बहा कर और अपने अच्छे से अच्छे सरदार और सलाहकारों को खोकर आज अलाउद्दीन को अगर कुछ मिला तो वह था मरणोन्मुख कुबड़े हाफ़िज़ का घोर अभिशाप !

गढ़ आया—सिंह गया

सन्ध्या-समय जब भगवान् भुवन-भास्कर अस्ताचल-गामी हो जाते हैं, तो चतुष्कोण पर्वतावली पर स्थित सिंहगढ़ दुर्ग की सुपरिचित धूमिल रूपरेखा पूना-निवासियों को स्पष्ट दिखाई देती है। जिस दिन सन्ध्या-समय तूफान का जोर होता है, सिंहगढ़ २३०० फीट नीचे बसे हुए पूना नगर पर प्रबल दैत्य की भांति हुङ्कार करता हुआ प्रतीत होता है।

इन दिनों उस उच्च पर्वतावली पर थोड़े से ग्रामवासी और स्वास्थ्य-सुधार के अभिलाषी ही रहते हैं और पहाड़ी के चतुर्दिक् फैले हुए विस्तृत जङ्गल में कुछ बघेरे आदि हिंस पशु ही रहते हैं। कभी-कभी जब दिन स्वच्छ होता है, तो पूने से सिंहगढ़ का दृश्य निराला हो उठता है।

× × × ×

बात १६६२ ई० के अप्रैल मास की है। उन दिनों वर्षा समय से पहले आरम्भ हो चुकी थी। पूना तुर्की स्नानागार-सा बना हुआ था। नगर में उत्तर-भारतीय सैनिकों के वृष्टि से भीगे हुए दल चारों ओर नजर आ रहे थे।

मुगल-सेनापति शाइस्ताखां सम्राट् औरङ्गज़ेब के आदेश से विद्रोही शिवाजी की खोज में पूने आ पहुँचा था और उस समय शिवाजी के ही रङ्गमहल पर अधिकार जमाये रङ्गरलियां कर रहा था। यह महल नदी तट पर स्थित है। शाइस्ता खां बादलों के बीच में अस्त होते हुए सूर्य की ओर क्रुद्ध दृष्टि से देख रहा था और सिंहगढ़ का ढांचा, मेघमाला में स्पष्ट रूप से देखने का प्रयत्न कर रहा था। वह सोच रहा था, कि इसी पहाड़ी पर कहीं शिवाजी और उनके पार्वत्य साथी छुपे होंगे। या सम्भव है वह पहाड़ी से पश्चिमी और पार्श्ववर्ती भागों में कहीं-न-कहीं होंगे।

मुगल-सेना भैंसों की तरह कीचड़ में फँसी हुई थी। वृष्टि और दलदल में घुड़सवार और तोपखानों के साथ पठान-सेना व्यर्थ सिद्ध हो रही थी। नगर में तरह-तरह की अफवाहें फैल रहीं थीं। कोई कहता था, कि अभी कल शाम को तो शिवाजी शहर के एक मन्दिर में तुकाराम की कथा सुन रहे थे। शाइस्ता खां इस बात पर विश्वास करने वाला न था; न उसे इस बात की ही आशङ्का थी, कि इस कीचड़-कादे में वह आकस्मिक आक्रमण कर देंगे।

× × × ×

धीरे-धीरे सन्ध्या गहन निशा के रूप में परिवर्त्तित हो गई। सहसा एक अफसर ने शीघ्रतापूर्वक आकर शाइस्तखां को कोई नया समाचार सुनाया; किन्तु वह समाचार कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं;—केवल इतना ही था, कि सम्राट् की हिन्दू घुड़-

सवार सेना के कुछ सैनिकों ने थोड़े से आदमियों को कैद कर लिया था, जो एक बरात में जा रहे थे। किन्तु पूना के सूबा-हाकिम ने बरात निकालने का आज्ञापत्र या हुक्मनामा दे दिया था।

ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती जाती थी, वृष्टि का जोर भी बढ़ता जाता था। शाइस्ताखाँ अपने भाग्य को कोसता हुआ सोने के लिये पलंग पर लेट गया।

घनी रात्रि में जब अन्धकार गहनतम हो उठा और वृष्टि का वेग अटूट रूप से बढ़ने लगा, तो तटिनी-प्रवाह के साथ वृष्टि की आवाज़ ने मिलकर वायुमण्डल में ऐसी सनसनाहट गुञ्जा दी, कि पच्चीस सशस्त्र व्यक्तियों के रङ्गमहल के बावर्चीखाने में प्रवेश करने की कुछ भी आहट किसी को न मिली।

बेचारे बावर्ची अगले दिन के लिये खाना पकाने में व्यस्त थे। वे सब क्षण भर में बिना किसी शोरोगुल के मौत के घाट उतार दिये गये। आक्रमणकारियों ने अब मिट्टी की उस दीवार को सेंध लगाकर तोड़ना शुरू किया, जो बावर्चीखाने को शयनागार से पृथक् करती थी। खुदाई की आवाज़ से शाइस्ता खां की निद्रा भङ्ग हुई किन्तु वह समझा कि यह आहट महल में होने वाले नैश कार्य की है, और फिर सो गया। अभी उसकी निद्रा गम्भीर भी न हुई थी कि शिवाजी तलवार लिये हुए टूटी दीवार से फांदकर उसके पास पहुँच गये। शाइस्ताखां को अब इस बात का क्षीण आभास मिला, कि वह खतरे में

था। वह विद्युद्गति से पलंग से उछला और खिड़की से कूदकर महल के दूसरे भाग में भागा। शिवाजी ने भी उसी द्रुत वेग से तलवार निकाली और उसका खिड़की पकड़े हुआ अँगूठा काट डाला।

अँधेरे में दो गुलाम लड़कियों ने शाइस्ताखां को सुरक्षित हरम के अन्दर पहुँचा दिया। शिवाजी अपने साथियों सहित इधर-उधर घूमकर शत्रुओं की खोज करने लगे। शाइस्ताखां के लड़के को उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया। थोड़ी ही देर में सारा महल उस भयङ्कर अन्धकार में होने वाले राक्षसी ताण्डव से गूँज उठा। अँधेरे में मुगल सैनिक और शाइस्ता खां के नौकर अपने ही आदमियों को शत्रु समझ के उन पर पिल पड़े। शिवाजी और उनके आदमी अपने रङ्गमहल और उसके पार्श्ववर्ती भाग के चप्पे-चप्पे से अभिज्ञ थे; किन्तु मुसलमानों के लिये यह जगह नई थी। उनसे कई स्थानों पर भयानक भूलें हो गईं। उन्होंने भूल से अपने पक्ष की कई स्त्रियों तक का वध कर डाला।

शिवाजी को अपने महल के कोने-कोने का जैसा ज्ञान था उसके होते हुए उस घोर अन्धकार में मुसलमानों द्वारा उनका पकड़ा जाना असम्भव ही था। जब तक शहर में इस घटना के प्रतिध्वनि-स्वरूप शोरोगुल मचा तब तक शिवाजी मुगलों की घुड़सवार सेना के बीच से होकर निकल भागे। मुगलों की घुड़-सवार सेना महल की दुर्घटना की खबर पाकर अभी घोड़ों पर

चढ़कर तय्यार भी न होने पाई थी, कि शिवाजी नगर से दूर निकल गये।

दूसरा आश्चर्य

शिवाजी की सेना की छोटी-सी घुड़सवार टुकड़ी सिंहगढ़ की ओर तीव्रता से वापिस जा रही थी। आगे बढ़कर वह अपनी एकत्रित और पूर्वसन्नद्ध सेना से जा मिली। मुगलों की घुड़सवार सेना उसका पीछा कर रही थी और दूर से मराठों के घोड़ों के पद-शब्द सुनाई दे रहे थे। पर यह क्या, मुगल घुड़सवार जब सिंहगढ़ के पार्श्ववर्त्ती जंगल में पहुँचे तो उन सबने देखा कि सारा जंगल प्रकाशमय हो रहा है। उन्होंने देखा कि शिवाजी की सेना ने वृष्टि से भीगे जंगल के वृक्षों में मशाल बाँध रखे हैं। उन्हें निश्चय हो गया, कि मराठों की प्रधान सेना अब करीब ही है। अब आगे बढ़ना उन्होंने मृत्यु-मुख में प्रवेश करने के सदृश समझा, इसलिये सेनापति की आज्ञा प्राप्त करने के लिये यह घुड़सवार दल पूने की ओर लौट पड़ा।

× × × ×

आप सिंहगढ़ के पूना-फाटक वाले अत्यन्त दुरारोह और ढालुवां पथ को देखिये, तो यह सोचकर आपको दाँतोंतले उंगली दबाना पड़ेगी, कि ऐसे बीहड़ मार्ग से मराठा सवार किस प्रकार बिजली की तरह कौंदते हुए शत्रु पर आक्रमण कर सुरक्षित स्थान पर वापिस जा पहुँचते थे। हाँ, यह बात अवश्य है, कि उस समय की सड़क आजकल की सड़क की अपेक्षा कहीं अच्छी थी और

तीन शताब्दी के दीर्घ समय ने भी उसे आज नाममात्र को अवशिष्ट रखा है।

रही शत्रु पर आक्रमण करके शीघ्रतापूर्वक २३०० फीट की ऊँचाई पर चढ़ने की बात। सो इसमें कोई आश्चर्य की बात इसलिये नहीं, क्योंकि एक तो उस समय के लोग आजकल के लोगों की अपेक्षा अधिक बलवान् और हृष्टपुष्ट होते थे; दूसरे पहाड़ या जंगल के रहने वाले देहाती, नगर-निवासी या उत्तर भारत के चौरस मैदानों के रहने वाले भारी शस्त्रास्त्र युक्त फौजी सिपाही की अपेक्षा अधिक सरलता से पहाड़ पर चढ़ सकते हैं।

आलंघ्य प्राकृतिक दीवारें

यद्यपि पहाड़ी पर सिंहगढ़ को बने ३०० वर्ष हो गये; किन्तु उसके आस-पास के ग्रामीण अब भी मुगल सेना के राजपूत सैनिक उदयभानु के उस शारीरिक शौर्य की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से करते हैं, जो उसने इस किले की दीवारों के आरोहण में दिखाया था। यह उस समय की बात है, जब औरङ्गजेब के सेना नायक जय सिंह ने सिंहगढ़ को अपने कब्ज़े कर लिया था और शिवाजी के परिवार को किले में ही घेर लिया था जिससे शिवाजी को कुछ समय के लिये आत्म-समर्पण करना पड़ा था।

शिवाजी ने जब यह देखा, कि वह अपनी स्त्री और परिवार को शत्रु के कब्जे में से निकालने में असमर्थ हैं, तो उन्होंने मुगल का अधीन और करद बनना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि सिंहगढ़ का घेरा हटा लिया जाये। जयसिंह ने शिवा

जी की शर्त्तें मान ली। बाद में जब किला फिर उनके अधिकार में दे दिया, तो उसके अन्दर से ७००० स्त्री-पुरुष और बच्चे निकल कर बाहर आ गये।

इसके पश्चात् युद्ध स्थगित हो गया और शिवाजी सुलह की शर्तों आदि पर बातचीत करने के लिये दिल्ली बुलाये गये। किन्तु १६७० ई० तक वह वहां की विपत्तियों से बचकर रायगढ़ आ गये और वहां से उन्होंने पुनः मुगलों से वह दुर्ग जीत लेने की योजना की, जिसे पांच वर्ष पूर्व बाध्य होकर शत्रुओं के अधिकार में छोड़ दिया था।

शत्रु ने जिन-जिन स्थानों पर अधिकार कर लिया था उनमें सिंहगढ़ की पुनर्प्राप्ति सबसे कठिन थी। क्योंकि उस किले में हज़ार चुने हुए अफ़गान, अरब और राजपूत सैनिक रक्षा के लिए तैनात किये गये थे। इसके अतिरिक्त पहाड़ी पर होने के कारण इस दुर्ग की प्राकृतिक दीवारें अलङ्घनीय थीं। स्वयं शिवाजी इस गढ़ को प्राप्त करने के सम्बन्ध में सन्दिग्ध थे। महाराष्ट्र में तो यह लोकश्रुति है, कि शिवाजी की माता जीजाबाई ने शतरञ्ज के खेल में अपने पुत्र को हराकर सिंहगढ़ जीतने की प्रेरणा प्रदान की थी। जीजाबाई कदाचित् सिंहगढ़ को ही अपना घर मानती थीं; क्योंकि त्र्यम्बक में जब वह मुगलों की कैद से मुक्त हुई थीं तभी से उन्हें सिंहगढ़ पुनः प्राप्त करने की चिन्ता लगी थी।

किन्तु सिंहगढ़-विजय का श्रेय ताना जी और उनके भाई

सूर्य जी को प्राप्त हुआ और यह महत्त्वपूर्ण विजय जिस सनसनीदार घटना के परिणाम-स्वरूप हुई; वह महाराष्ट्र के इतिहास में एक अपूर्व बात थी।

ताना जी अपने साथ १००० चुने हुए पर्वतीय सैनिक लेकर रवाना हुए। इनमें ३०० योद्धा तो ऐसे थे, जो महाराष्ट्र के युद्ध में नाम पा चुके थे। सिंहगढ़ के कल्याण फाटक और पूना फाटक पर कड़ा पहरा और रक्षा का प्रबन्ध था, अतः उन्होंने ऐसी दुर्गम्य चढ़ाई पार कर किले में प्रवेश करने के लिये उधर से ठानी जिधर से आक्रमण होने की शत्रु को कभी आशङ्का हो ही न सकती थी। यह दुर्गम्य चढ़ाई केवल मानवनिर्मित दीवार की नहीं, प्रत्युत प्रकृति की बनाई उस ऊँची पहाड़ी की थी, जो सिंहगढ़ के पश्चिमीय भाग में अपनी दुरूहतापूर्ण दुर्लंघ्यता के कारण मानव-शक्ति को तुच्छ बना रही थी।

गोह का आश्चर्यजनक कार्य

इस महान् किन्तु दुरूह कार्य को पूरा करने में एक छोटे से जीव 'गोह' ने जो आश्चर्यजनक कार्य किया; उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है, कि सिंहगढ़-विजय में इस जीव को सबसे अधिक श्रेय दिया जा सकता है।

सिंहगढ़-विजय के लिये शिवाजी के वीर सैनिकों ने माघ मास की एक ऐसी अँधेरी रात चुनी थी, जब जाड़ा काफ़ी पड़

रहा था। इन वीरों को सिंहगढ़ की पश्चिमीय कुदरती दीवार तक पहुँचने में खाडकवासला से लेकर किले के नीचे तक का बीहड़ जङ्गल तय करना पड़ा। इन दिनों यदि आप किले के उस पिछले भाग में जाकर खड़े हो जायें, तो आश्चर्य से यही कहना पड़ेगा कि उस पहाड़ी की दीवार पर शिवा जी के आदेश पर ताना जी का जाना एक प्रकार का पागलपन ही था। साहसी वीर मराठे भी इस कृत्य को एक प्रकार से असम्भव ही बताते हैं। लोगों का कहना है कि साधारण शौर्य की बदौलत इस कार्य को सम्पन्न करना अतिदुरूह था। किन्तु ताना जी सूरमा ही नहीं, बुद्धिमान भी थे। उन्होंने जीजाबाई के चरणों पर अपनी पगड़ी रखकर यह प्रतिज्ञा की थी, कि उनके लिये वह सिंहगढ़-विजय करेंगे, और उस प्रतिज्ञा का पालन आवश्यक ही नहीं; अनिवार्य था।

× × × ×

तानाजी के पास एक सन्दूक लाया गया। उससे तानाजी ने एक गोह निकाली। यह वही जीव है, जो जंगलों में पाया जाता है और जिसकी आकृति तो छिपकली जैसी होती है और लम्बाई होती है हाथ-डेढ़ हाथ की। तानाजी ने गोह को पीठ सुहलाई और उसे 'यशवन्त' के नाम से बुलाया तथा उसके गले में मोतियों की माला पहना दी। उस समय यदि कोई किले के ऊपर से ताना जी का यह कृत्य देखता, तो उन्हें पागल के अतिरिक्त और कुछ न समझता। वह यह कदापि न समझता कि ताना जी जैसा गोह से खेलने वाला व्यक्ति किले के अधिकारियों को कोई हानि

पहुँचा सकता है। आक्रमणकारी के साथ गोह का भला क्या काम !

तानाजी ने गोह को प्यार करने के बाद उसके बदन में रेशमी रस्सी की एक हल्की सीढ़ी बांध दी। यशवन्त को उसका काम अच्छी तरह सिखाया गया था। वह क्षण भर में ही उस अँधेरी रात में गायब हो गया। वह तेज़ी से सिंहगढ़ की प्राकृतिक दीवार पर चढ़ गया। उसके साथ रस्सी का वह पूरी लम्बाई का ज़ीना दीवार पर लग गया। गोह उस श्रेणी का था, कि वह दीवार के सिरे पर पहुँच कर जो चिपक गया, तो मानो वज्र ही हो गया। उसके सहारे भारी से भारी सैनिक रस्सी के जीने पर चढ़कर दीवार के सिरे पर पहुँच सकता था। इस प्रकार प्राकृतिक दीवार की तरह प्राकृतिक सीढ़ी भी बनकर तय्यार हो गई।

आक्रमणकारी जब यह समझ गये कि गोह चलती-चलती दीवार के सिरे पर पहुँच गई और अब उसका सरकना बन्द हो गया, तो एक चपल मराठा युवक रस्सी के ज़ीने पर चढ़ कर दीवार के सिरे पर जा पहुँचा और उसने गोह को हटाकर रस्सी की सीढ़ी का ऊपरी भाग दीवार के ऊपरी एक प्रस्तर खण्ड से खूब अच्छी तरह कसकर बांध दिया। उद्देश यह था कि दल के सभी सैनिक चढ़कर ऊपर पहुँच जायें।

इसी समय एक पहरेदार ऊपरी भाग पर आता दिखाई दिया। क्षण भर में नीचे के सैनिकों ने उसके हाथ की रौशनी देखकर सब समझ लिया, और उसे तीर का निशान बना दिया।

तानाजी अब अविलम्ब ही अपने साथियों सहित दीवार के सिरे पर चढ़ गये। केवल अपने भाई सूर्य जी को उन्होंने अधिक सैनिकों की सहायता लाने के लिये नीचे छोड़ दिया। जब आक्रमणकारी दल दीवार के सिरे पर पहुँच गया, तो उसे मालूम हुआ, कि पहरेदार या सन्तरी का शरविद्ध होना शत्रु दल द्वारा देख लिया गया और अब किले की भीतरी सेना सङ्घर्ष के लिये तय्यार हो रही है। तानाजी और उनके साथियों ने अपनी पूरी शक्ति लगा कर युद्ध किया; किन्तु किले की संख्या बहुत अधिक थी; इसलिये उनकी कठिनाई बढ़ती गई। तानाजी वीरगति को प्राप्त हो गए। उनके देहावसान के बाद उनकी पार्वत्य सेना का दिल टूट गया और क्षण भर के लिये ऐसा मालूम हुआ कि सेना अब पीछे हटना ही चाहती है।

सङ्कट-काल

ऐसे सङ्कट-काल में सूर्यजी कुमुक लेकर पहुँच गये। उन्होंने शीघ्रतापूर्वक अपने सैनिकों के पास पहुँच कर कहा—"रस्सी काट दी गई है; भागने की चेष्टा करना व्यर्थ है। क्या तुम अपने नेता की लाश यवनों के हाथ खाई में फेंकने के लिये छोड़ जाओगे?"

इस पर पलायनोन्मुख मराठे सैनिक फिर मुड़े और "हर हर महादेव" की तुमुल-ध्वनि के साथ मुगल-सेना पर टूट पड़े। मदद आ जाने पर मराठों में नई जान आ गई। सूर्यजी की हुङ्कार से एक बार फिर मराठों में नवजीवन का सञ्चार हो उठा। उन्होंने तीव्र झपाटे के साथ शत्रु पर आक्रमण किया। मुगल-सेना इस

अप्रत्याशित कुमुक के आक्रमण का मुकाबिला करने के लिये तय्यार न थी। दूसरे ऐसे विषमस्थल पर लड़ने का मुग़ल सेना के उत्तर भारतीय सिपाहियों को अभ्यास भी न था। अन्त में मुगल सेना के पांव उखड़ गए। उसके आधे से अधिक सैनिक काम आ गये। सिंहगढ़ को पहले जीतने वाले उदयभानु के प्राण-पखेरू भी उड़ गये। मराठों के केवल ३०० सैनिक मारे गये। सिंहगढ़ में उदयभानु की समाधि अब भी मौजूद है।

जब युद्ध समाप्त हुआ और सिंहगढ़ मराठों के हाथ आ गया, तो किले में स्थित छप्पर के झोंपड़ों में आग लग गई। ३० मील पश्चिम में स्थित रामगढ़ से शिवाजी ने इस अग्नि की शिखायें देखीं। उन्हें मालूम हो गया, कि सिंहगढ़ पुनः मराठों के हाथ आ गया। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। किन्तु कुछ ही घण्टों बाद जब घुड़सवारों ने जाकर उन्हें समाचार दिया कि वीर तानाजी की बलि देकर सिंहगढ़ प्राप्त हुआ है, तो वह शोकाकुल हो उठे। उन्हें तानाजी की वह बुद्धिमत्ता और वीरता याद आई जब वह उन्हें अपने साथ दिल्ली ले गये थे, और शिवाजी के नज़रबन्द हो जाने पर उन्होंने बड़े कौशल से उन्हें बचाकर निकाला था। तानाजी बड़े-बड़े खतरों के समय काम आये थे। महाराष्ट्र के निर्माण में उनकी सेवाएँ अपूर्व थीं। किन्तु आज जिस प्रकार उनके जीवन का अन्त हुआ; वह उनके जैसे वीर के लिये गौरव का कारण था। तानाजी मरते-मरते भी सिंहगढ़ विजय कर गये।

इसी अवसर पर शिवाजी ने आह भर कर कहा था—"गढ़ आला; सिंह गेला" अर्थात् गढ़ या किला तो हाथ आ गया; पर सिंह के समान वीर तानाजी इस संसार से चले गये।

इसके पश्चात् सिंहगढ़ के लिये पुनः संघर्ष हुए; किन्तु वह फिर शत्रु के हाथ न लग सका। जिस कुदरती दीवार पर यशावन्त नामक गोह या घोरपड चढ़ा था; उसे फिर कटवा-छँटवा कर ऐसा बनवा दिया गया, कि कभी शत्रु उसी उपाय का अवलम्बन कर किले पर आक्रमण न कर सके।

सिंहगढ़ को देखकर कितनी ही प्राचीन ऐतिहासिक स्मृतियां जागृत हो उठती हैं और वहां से पूर्वाभिमुख खड़े होने पर राजगढ़, तोरण और पुरन्दर के दुर्गों के दर्शन होते हैं। इन पर्वतस्थ किलों को देखकर मराठा और मुगल-संघर्ष का इतिहास-पृष्ठ हमारे मानस-चक्षु के सामने खुल जाता है।

तलवार

जयनगर के महाराज जगजीतसिंह की अभिलाषा केवल राजपूताना या भारतवर्ष को अपने शासनान्तर्गत करने की नहीं; वेदान्ती के ब्रह्म की व्यापकता की ही तरह उनकी महत्त्वाकांक्षा भी विस्तृत थी। उन दिनों जयनगर भारत का सर्वश्रेष्ठ राज्य माना जाता था; साथ ही जगजीतसिंह देश के अद्वितीय शासक भी समझे जाते थे। एक-एक कर सभी राज्य जगजीतसिंह की आधीनता स्वीकार करते गये। सभी राजा जानते थे, कि ऐसे प्रबल प्रतापी शासक के अधीनस्थ होकर रहने में ही उनका कल्याण है। ऐसा प्रतीत होता था, कि कुछ ही वर्षों में जगजीत सिंह भारत के एकछत्र सम्राट् हो जायेंगे। जगजीतसिंह कभी किसी युद्ध में हारे नहीं थे—उनका बाहुबल और साहस अद्भुत था। वह युद्ध के लिये सदा तय्यार मिलते थे। आज तक न तो कोई उनका सामना सफलतापूर्वक करने वाला योद्धा मिला था; न शासन में ही कोई राजा उनकी बराबरी कर सका था।

यह सब था; किन्तु महाराज जगजीतसिंह अपनी वर्त्तमान स्थिति से सन्तुष्ट न थे। उनके पड़ोसी विजयनगर के राजा

रणमल्ल ने अभी तक उनकी अधीनता स्वीकार न की थी। रणमल्ल यद्यपि नवयुवक और अनुभवहीन थे; पर उन्हें अपनी तलवार का भरोसा था।

× × ×

महाराज जगजीतसिंह को रणमल्ल की यह बात कांटे की तरह खटकती थी। विजयनगर जैसे छोटे-से राज्य का जगजीतसिंह की अधीनता न स्वीकार करना वास्तव में उनके लिए अप्रतिष्ठा की बात थी। और वह विजयनगर भी कोई दूरवर्त्ती राज्य नहीं; जयनगर की सीमावर्ती पर्वतावली के पार मिला हुआ ही है। आस-पास के राजाओं ने रणमल्ल को बार-बार समझाया, कि वह जगजीतसिंह के झण्डे के नीचे आ जायें, क्योंकि ऐसा करने में विजयनगर जैसे छोटे राज्य को महाराज जगजीतसिंह का संरक्षण मिल सकता था और यह एक बड़ी सुबिधा की बात थी। आवश्यकता पड़ने पर जगजीतसिंह अपने अधीनस्थ राज्यों की रक्षा उसके शत्रुओं से किया करते थे; किन्तु इस प्रकार के सभी परामर्शों का रणमल्ल यह जवाब दिया करते थे, कि मुझे तो केवल अपनी तलवार का भरोसा है। मेरे प्रजाजन की रक्षा मेरी तलवार पर ही निर्भर करती है। अभी तक मेरी तलवार ने न तो मेरी प्रजा को धोका दिया है; न मुझे।

इस प्रकार रणमल्ल निश्चिंत और प्रमुदित भाव से अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का आनन्द भोगते रहे।

रणमल्ल की यह स्वतन्त्रता उनके पड़ोसी महाराज जगजीत-सिंह को बहुत अखर रही थी। वह रणमल्ल की करतूतों से क्रुद्ध इसलिये भी होते थे, कि वह आये दिन जयनगर की सीमा में घुस आता; उसके शिकार मार ले जाता और उनके सीमारक्षकों की दुर्गति किया करता था। कोई यह बात नहीं कह सकता था, कि रणमत्त रणमल्ल कल क्या करने वाला है? रणमल्ल बड़े खतरों को चुटकियों में उड़ा दिया करता था। वह सिंह के ही सदृश वीर और साहसी था। ऐसा प्रतीत होता था कि वह माँ के पेट से ही तलवार चलाने की कला सीखकर पैदा हुआ है। उसकी प्रजा उसके इस शौर्य पर मुग्ध थी। उसके वीर सैनिक स्वामी के अद्वितीय युद्ध-कौशल पर जान देते थे; और वह उसके साथ संसार की किसी भी सेना से लोहा लेने को तय्यार रहने के दावेदार थे। रणमल्ल की इस वीरता के कारण ही सारे भारत में उनका तथा विजयनगर का नाम तथा यशोविस्तार होने लगा।

जगजीतसिंह रणमल्ल की वर्द्धित-यशोगाथाओं को सहन न कर सके। उन्हें इस बात पर क्षोभ होता था, कि उनका पड़ोसी छोटा-सा राज्य, उनकी अधीनस्थता स्वीकार न कर इतना यशस्वी बनता जा रहा है। रणमल्ल की वीरता की कहानी चारणों के अलङ्कार सहित, जगजीतसिंह की पुत्री रम्भा के कानों तक भी पहुँची। वह रणमल्ल की शौर्यगाथा बड़े चाव से सुनने लगी। राजकुमारी रम्भा की माता का देहावसान हो चुका था और वह अपने बाप की एकमात्र सन्तान थी। बाप का साहस बेटी में भी

विकसित हुआ था। यही कारण था, कि रणमल्ल की वीरता की बातें उसे बहुत भाती थीं। महाराज जगजीतसिंह उसकी इस बात से अप्रसन्न रहा करते और कहते, कि उनके सामने वह रणमल्ल का नाम न ले "रणमल्ल दुष्ट है; वह अपने नाम को बट्टा लगाने वाला है और राजस्थान में अशान्ति फैलाने का उत्तरदायित्व उसी पर है।"

यद्यपि सच बात यह थी, कि राजस्थान में उनके समय में सर्वाधिक उपद्रव महाराज जगजीतसिंह के कारण हुआ था।

"क्या तुम्हारे मन में रणमल्ल के अतिरिक्त और कोई बात विचार करने के लिये नहीं आती" पिताने एकदिन पुत्री से कहा— "अच्छा, तो अब मैं तुम्हें एक विचारणीय बात बतात हूँ। तुम्हारी अवस्था अब विवाह योग्य हो चुकी है।"

"तो इसमें विचार की क्या बात है, पिता जी," रम्भा ने कहा—"स्वयम्वर की व्यवस्था कीजिये; मैं योग्य वर चुन लूँगी।"

उन दिनों हिन्दू-राजवंश में स्वयम्वर-प्रथा पूर्णरूप से प्रचलित थी। राजकन्या को अधिकार होता था, कि वह स्वयम्वर-प्रथा में उपस्थित राजाओं और राजकुमारों में जिसे चाहे उसके गले में जयमाला डालकर अपना पति चुन ले। जयनगर के महाराज जगजीतसिंह ने इस रस्म के लिये एक दिन निश्चित किया और स्वयम्वर-सभा की सब तय्यारियां कर लीं। इस महत्त्वपूर्ण अवसर के लिये सारे भारत के विवाह-योग्य अवस्था के राजा-महाराजाओं और राजकुमारों को आमन्त्रित किया। बहुत से

सुयोग्य राजकुमार इस अवसर पर भारत-प्रसिद्ध महाराज जगजीतसिंह की कन्या को प्राप्त करने के लिये उत्सुकतापूर्वक जयनगर पधारे। महाराज जगजीतसिंह अपनी पुत्री रम्भा को समझाया, कि वह अपने भावी पति के यश, राज्य-विस्तार आदि का ख्याल रखे। रम्भा ने धैर्यपूर्वक पिता की सब बातें सुन लीं; किन्तु कोई वादा न किया।

महाराज जगजीतसिंह ने दूर दूर के राजाओं को तो आमन्त्रित किया; पर अपने पड़ोसी विजयनगर के नवयुवक राजा रणमल्ल को नहीं बुलाया। राजकीय शिष्टाचार की दृष्टि से जगजीतसिंह की यह बात उचित नहीं कही जा सकती थी; क्योंकि इससे विजयनगर और उसके राजा का अपमान होता था।

स्वयम्वर-सभा में निकट और दूर के आये हुए राजाओं की मण्डली उपस्थित हुई। वह अपने-अपने स्थान पर विराजमान, हुए। इन राजाओं और राजकुमारों में बहुत से वीर, सुन्दर और यशस्वी थे। राजकुमारी ने अपनी सहेलियों के साथ सभा स्थल में प्रवेश किया। उसके हाथ में जयमाला थी। आज उसका सौन्दर्य प्रस्फुटित हो रहा था। सब की दृष्टि उसी की ओर आकर्षित हो रही थी—महाराज जगजीतसिंह और समस्त आगत राजे-महाराजे, सगे-सम्बन्धी, स्त्री-पुरुष सब का ध्यान रम्भा की ओर लग रहा था। रम्भा सभास्थल में पहुँचकर रुकी और कुछ विचार करने लगी।

इसी समय द्वार की ओर सहसा कोई हलचल होने की आहट आई। द्वार-रक्षकों को एक ही चपेट में धराशायी कर शीघ्रता-पूर्वक एक लम्बा, तगड़ा दढ़ियल और अधेड़ अवस्था का प्रतीत होने वाला व्यक्ति अन्दर घुस आया। यह व्यक्ति निर्भीक भाव से महाराज जगजीतसिंह के पास आकर बोला—"श्रीमन्, मैं विजय-नगर के राजा का दूत हूँ। मेरे स्वामी ने मुझे यह पूछने के लिये भेजा है, कि उन्हें इस समारोह में आमन्त्रित क्यों नहीं किया गया? यह भूल अनिच्छापूर्वक हो गई है या जान बूझकर की गई है।"

महाराज जगजीतसिंह ने भ्रू-विक्षेपपूर्वक कहा—"विजय-नगर के रणमल्ल की यह धृष्टता! जाकर अपने स्वामी से कहो कि इस समारोह में उन्हें इसलिये आमन्त्रित नहीं किया गया, कि यहाँ उनकी आवश्यकता नहीं थी।"

सारी सभा में स्तब्धता छा गई थी। किन्तु क्षण भर बाद सन्देशवाहक ने कहा—"तो महाराज, मुझे यह सूचना देने का अधि-कार दिया गया है, कि इसका जवाब मेरे स्वामी युद्ध द्वारा देंगे।"

"युद्ध!" महाराज जगजीतसिंह ने घृणा-व्यञ्जक स्वर में गर्ज कर कहा—"युद्ध! विजय नगर-जैसे तुच्छ राज्य के शासक मुझ से युद्ध करेंगे!"

"हाँ, श्रीमान्" सन्देशवाहक ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

महाराज जगजीतसिंह गम्भीर भाव से मुस्कराये।

"अच्छी बात है" उन्होंने कहा—"अपने राजा से जाकर कहो,

कि जो व्यक्ति शेर को उसकी मांद में से बुलाता है, उसे अपने उतावलेपन पर तब अफसोस होता है, जब शेर उस पर टूट पड़ता है।"

"ठीक है, श्रीमान्। मैं तो केवल राजदूत हूँ, किन्तु इसका जवाब मेरे स्वामी यह देंगे, कि तलवार चलाने में निपुण लोग शेरों को भी मौत के घाट उतार दिया करते हैं।"

महाराज के भवें तन गईं—उन्होंने कहा—'राजदूत अवध्य होते हैं, अन्यथा मैं अभी तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर देता। जाओ।"

सन्देशवाहक अभिवादन कर प्रस्थानोन्मुख हुआ। राजकुमारी रम्भा शान्त और गम्भीर खड़ी उसकी ओर देख रही थी। जय-माला उसके हाथ में थी। उसकी सहेलियाँ उसके पीछे थोड़े फासले पर खड़ी थीं। राजकुमारी ने पिता और राजदूत का वार्तालाप अक्षरशः सुना था। जब राजदूत द्वार के निकट आया, तो रम्भा ने उसे सम्बोधन कर कहा—"ठहरो।"

राजदूत राजकुमारी की ओर मुड़ा और उनकी बात सुनने के लिये उत्सुक हुआ।

"मैं भी विजय नगर के राजा को सन्देश भेजना चाहती हूँ" राजकुमारी ने कहा—"यह मेरा स्वयम्वर है, अतः मैं अपने अभीष्ट वर को यह जयमाला भेज रही हूँ। मैंने विजयनगर-नरेश को अपना वर चुन लिया है।"

इस समय सब सांस रोककर राजकुमारी की बातें सुन रहे

थे। रम्भा ने जयमाला सन्देश-वाहक के हाथ में देते हुए कहा "यह जयमाला अपने राजा के पास ले जाओ और उनसे कहो, कि मैं वीरता को सबसे ऊँचा गुण मानती हूँ।"

"महाराज कुमारी!" सन्देश-वाहक ने नम्रतापूर्वक कहा—"मैं यह कार्य प्रसन्नतापूर्वक करूंगा।"

राजकुमारी ने राजदूत की आंखों की ओर ध्यान से देखा। राजकुमारी के नेत्र आश्चर्य से विस्फरित हो उठे। राजकुमारी को मालूम हो गया, कि वैसी स्वच्छ, प्रसन्न और मुग्ध आँखें उस दाढ़ी से मेल नहीं खातीं। वह आखें तो किसी नवयुवक की थीं। हो न हो यह दाढ़ी का स्वांग नकली है।

एक क्षण का भी और विलम्ब लिये बिना सन्देश-वाहक राजकुमारी को झुक कर अभिवादन करने के बाद सभास्थल से चला गया।

❀ ❀ ❀ ❀

इधर जगजीतसिंह की क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो चुकी थी। उनके सामने रम्भा शान्त भाव से खड़ी हो गई।

"पिता जी!" रम्भा ने पिता के भयानक क्रोध को देख कर कहा—"स्वयम्बर मेरा है; इसलिये वर के चुनाव का अधिकार तो मुझे ही होना चाहिये।"

"बेशर्म कहीं की; क्या तुझे पागलपन हो गया है? क्या राजस्थान में रणमल्ल से सौ-गुने सम्पन्न, सुन्दर और वीर राजे मौजूद नहीं हैं। तुमने इतनी बड़ी सभा में एकत्र राजाओं का

तिरस्कर किया और मुझे हँसी और उपहास का पात्र बना दिया। मैं तुम्हें आठ पहर का समय सोचने को देता हूँ। इतने समय में तुम अपना यह पागलपन-भरा निश्चय बदल डालो, यदि तुमने ऐसा न किया, तो मैं तुम्हें गढ़ में क़ैद कर दूँगा और तब तक मुक्त न करूँगा जब तक कि तुम्हारी बुद्धि ठिकाने न आ जायेगी।

रम्भा इस आतङ्कपूर्ण दण्डाज्ञा से तनिक भी विचलित न हुई और बोली—"पिता जी, आप चाहे जो दण्ड दें; पर मैं अपने निश्चय से न डिगूँगी।"

❀ ❀ ❀ ❀

इस घटना के बाद महाराज जगजीतसिंह ने अपनी सेना का पुनर्सङ्गठन किया और वह उसे लेकर विजयनगर चढ़ दौड़े। जो पहाड़ियाँ जयनगर और रणमल्ल के राज्य की सीमा बनाती थीं, वहां, उनके पीछे रणमल्ल की सेना आक्रमण की प्रतीक्षा पहले ही कर रही थी। जगजीतसिंह का आक्रमण बड़े ही प्रबल वेग से हुआ। दोनों ही ओर से ऐसा उत्कट सङ्घर्ष हुआ जैसा राजपूतों के बीच हो सकता है। दोनों पक्ष ने अपना प्रबलतम पराक्रम दिखाया। युद्धकला प्रवीण और अनुभवी जगजीतसिंह युद्ध में सब से आगे थे। नवयुवक रणमल्ल ने भी यही किया और एक-साथ कई स्थलों पर उन्होंने शत्रु-सेना का मुकाबला स्वयं अपने बाहुबल पर किया। रणमल्ल के लिये भय एक अज्ञात वस्तु थी। वह उस जगह अधिक वीरता के साथ बढ़ते थे जहां

शत्रु के तीर सब से अधिक संख्या में गिर रहे थे। रणमल्ल ने अकेले अद्भुत शौर्य का परिचय दिया। जहां उसके सैनिक कुछ भी कमज़ोरी दिखाते प्रतीत होते, वहां रणमल्ल तलवार घुमाते हुए स्वयं पहुँचता और अकेले कितने ही शत्रुओं को मार गिराता था। इस महोद्योग से रणमल्ल थक कर चूर हो गया; किन्तु उसने अपनी थकावट को जरा भी पर्वाह न की। उसकी सेनाओं के मुकाबले में जगजीतसिंह की सेनायें संख्या में बहुत अधिक थीं; फिर भी रणमल्ल के शौर्य ने उसके योद्धाओं में साहस भर दिया था और वेपांव पीछे न हटाते थे। महाराज जगजीतसिंह ने युवक रणमल्ल का यह पराक्रम देखा, तो मन-ही-मन उसे सराहने का लोभ-संवरण न कर सके।

किन्तु चाहे जैसे वीर सैनिक हो; अत्यधिक संख्या में सामने उमड़ते हुए शत्रु दल का मुकाबला वह अनिश्चित काल तक नहीं कर सकते। फिर भी रणमल्ल चप्पा-चप्पा भूमि के लिये शत्रु के दांत खट्टे कर रहा था। रणमल्ल और उनकी सेनायें पीछे ज़रूर हटती थीं; किन्तु एक-एक कदम लड़कर। थोड़ा-थोड़ा कर हटते हुए रणमल्ल को अपनी सेना सहित पहाड़ी पर स्थित अपने थम्बोरगढ़ दुर्ग के पास पहुँच जाने पर बाध्य होना पड़ा। यह थम्बोरगढ़ ही विजय नगर का प्रवेश द्वार था, इसलिये जगजीतसिंह ने इस किले को घेर लेना आवश्यक समझा। थम्बोरगढ़ को ले लेना विजय नगर को ले लेना था। जगजीतसिंह ने थम्बोर पर आक्रमण करने में ही सारी शक्ति लगा देने का निश्चय किया। फिर

भी रणमल्ल ने हिम्मत न हारी। उसकी सहन-शक्ति की प्रशंसा कोई भी कर सकता था। प्रबलतर शक्ति और संख्या वाले शत्रु का मुकाबला इतने समय तक करना दूसरे किसी के लिये असम्भव था।

अपने थोड़े से सैनिकों को लेकर महाराज जगजीतसिंह की विशाल-सेना का मुकाबला रणमल्ल ने जिस शौर्य के साथ किया, उसे देख कर शत्रु को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी। रणमल्ल ने अपने सैनिकों को किले की दीवार पर चढ़ा दिया और अन्त में किले की रक्षा के लिए विद्युद्गति से रणकौशल दिखाकर उन्हें प्रोत्साहित करने लगा। महाराज जगजीतसिंह युवक रणमल्ल का शौर्य देख मोहित हो गये और वह उसे हृदय से सराह उठे। अन्ततः उन्होंने रणमल्ल से सन्देश-वाहक भेजकर स्पष्ट प्रस्ताव कर दिया, कि वह अब भी आत्म-समर्पण कर उनके साथ प्रतिष्ठापूर्ण समझौता कर ले।

"आत्म-समर्पण कभी प्रतिष्ठापूर्ण नहीं हुआ करता।" रणमल्ल ने संदेश मिलने पर कहा। वह तत्काल आगे बढ़कर अपने समस्त सैनिकों से अलग हो गया और इस प्रकार खड़ा हो गया कि महाराज जगजीतसिंह उसे देख सकें और चाहें तो उस पर आक्रमण करें। रणमल्ल को इस प्रकार अकेले आगे बढ़ते देख उनके सैनिक एक बार तो घबरा उठे; किन्तु रणमल्ल अविचलित भाव से युद्धस्थल के बीच में अकेले खड़ा हो गया। अन्त में रणमल्ल के अवशिष्ट सैनिक यह देख जोश में आ गये और

उन्होंने उच्च स्वर से जय-ध्वनि की।

यह देख जगजीतसिंह की रणमल्ल के प्रति मूक-प्रशंसा की भावना ने आत्माभिमान का रूप धारण कर लिया। उन्होंने अपने सूरमाओं से पुकार कर कहा—'हमारे लिये यह लज्जा की बात है, कि इन थोड़े से सैनिकों ने हमारी विशाल सेना को आगे बढ़ने से रोक रक्खा है। बहुत समय हो चुका। हम थम्बोरगढ़ पर अब जो आक्रमण करें उसमें विजय प्राप्त कर के ही रहें।'

किले की चहारदीवारी के जिस भाग को जगजीतसिंह ने सब से कमज़ोर समझा था उस पर सामूहिक रूप से आक्रमण कर दिया। थोड़े ही समय में यह सिद्ध हो गया कि रणथम्बोर का वह भाग वास्तव में कमज़ोर था, क्योंकि उस जगह रणमल्ल की सेना आत्मरक्षा में असमर्थ होकर नष्ट हो गई। जगजीतसिंह की सेना ने तुफंग-द्वारा रणथम्बोर-गढ़ की दीवारों को धीरे-धीरे तोड़ना शुरू किया। धीरे-धीरे दीवार के पत्थर टूट-टूट कर गिरने लगे। जगजीतसिंह के सैनिकों ने रण-कोलाहल किया; किन्तु किले के अन्दर से जवाब में कोई आवाज़ न आई। बार-बार तुफँग की प्रबल धमक से दीवार के एक भाग में भूकम्प के प्रबल धड़ाके की आवाज़ के साथ बड़ा-सा छेद हो गया। जगजीतसिंह के सशस्त्र सैनिक इसी सूराख से थम्बोर के दुर्ग में घुस पड़े।

× × ×

किन्तु किले में घुस कर जगजीतसिंह की सेना ने देखा कि

वहां उनका मुकाबला करने वाला कोई नहीं है। केवल एक व्यक्ति था जिसके वस्त्र फटे और शरीर लहूलुहान हो रहा था। उसके हाथों में उसकी तलवार अब भी चमक रही थी और उसकी आँखों से तेज बरसता था। ऐसा प्रतीत होता था, कि इस अवस्था में भी वह वीर बिजली की तरह झपटने का साहस रखता है। वह अपने प्राणों को तृण समझता प्रतीत होता था। जगजीतसिंह के सूरमाओं ने उस वीर युवक को घेर लिया; पर उसका स्पर्श करने का साहस किसी में न था, क्योंकि वह वीर कोई और नहीं, स्वयं रणमल्ल था। सारी सेना के समाप्त हो जाने पर भी रणमल्ल विचलित न हुआ था, न आत्मसमर्पण के लिये तैयार था। उसने जगजीतसिंह के प्रधान सेनापति से कहा—"थम्बोर में अब मैं ही अकेला बचा हूँ; ऐसी अवस्था में मेरा यह दावा है, कि मुझे आप के स्वामी जगजीतसिंह जी से द्वन्द्वयुद्ध करने का अधिकार है, क्योंकि राजपूत परम्परा के अनुसार अब यही एक मार्ग बाकी रहा है। आप अपने स्वामी को मेरा यही सन्देश पहुँचा दें। मैं आत्मसमर्पण न करूँगा।"

सन्देश जगजीतसिंह के पास पहुँचा। वह तुरन्त वहां आ पहुँचे जहां उनकी सेना रणमल्ल को घेरे खड़ी थी। किन्तु रणमल्ल का रक्तरञ्जित शरीर और फटे वस्त्र देख जगजीतसिंह का कठोर हृदय भी पिघल गया। युवक रणमल्ल के अनेक घावों से रक्त बह रहा था और थकावट से उसका शरीर मरणासन्न हो रहा था; फिर भी उस शरीर से एक अलौकिक तेज और आन बरस रही थी

"आप लड़ने-योग्य नहीं हैं।" जगजीतसिंह ने कहा।

"पर अभी मेरी तलवार मेरे हाथ में है।" रणमल्ल ने क्षीण किन्तु गम्भीर मुस्कराहट के साथ कहा।

अन्त में दोनों राजपूत राजा लड़े। रणमल्ल ऐसे साहस और बल के साथ लड़ा कि उसके विरोधी महाराज जगजीतसिंह और दर्शक सैनिकों को आश्चर्य हुआ। उन सब ने किसी एक व्यक्ति में इतना साहस और शौर्य नहीं देखा था। फिर भी यह युद्ध बराबरी का नहीं था—एक ओर तो घायल, क्लान्त और अशक्त-प्राय रणमल्ल था और दूसरी ओर अनुभवी योद्धा और ताज़ातर महाराज जगजीतसिंह। कुछ देर तक युद्ध होने के बाद लोगों ने लक्ष्य किया, कि अब रणमल्ल के लिये लड़ते रहना अशक्य-सा है। अन्ततः जगजीतसिंह के एक प्रबल प्रहार से रणमल्ल की तलवार हाथ से छूटकर दूर जा पड़ी। रणमल्ल अब निहत्थे हो चुके थे—फिर भी वह जगजीतसिंह की तलवार की नोक के सामने निर्भय खड़े थे। जगजीतसिंह ने निहत्थे पर तलवार चलाना अधर्म समझा और खड़े रहकर बोले—"विजयनगराधिपति, मैंने अपने जीवन में बहुत-सी लड़ाइयां लड़ी हैं; किन्तु आपके सदृश साहसी योद्धा मैंने कभी न देखा, मैं आप जैसे वीर को मारना वीर-धर्म के विपरीत समझता हूँ। क्या आप अब भी आत्म-समर्पण न करेंगे?"

"आत्म-समर्पण करने के बाद क्या मैं वीर कहा जा सकता हूँ?" रणमल्ल ने कहा।

"किन्तु यदि मैं आपको विजयनगर का राजा बना रहने दूँ और केवल अपना ही अधीनस्थ बनाकर छोड़ दूँ, और मैं यह प्रतिज्ञा करूँ कि मैं आप पर कोई प्रभुत्व न जमाऊँगा, तो आप इसे स्वीकार कर लेंगे ?" जगजीतसिंह ने कहा।

"पर मैं किसी का भी अधीनस्थ न बनूँगा।" रणमल्ल ने कहा।

"आप मुझे बाध्य कर रहे हैं कि मैं इस युद्ध में आपको समाप्त कर दूँ; किन्तु मैं ऐसा करना नहीं चाहता था।" जगजीतसिंह ने कहा।

"मैं आप से दया नहीं चाहता," रणमल्ल ने कहा—"यदि आप मुझे मार सकें तो शौक से मारिये। और यदि आप एक बार मुझे मेरी तलवार दे दें, तो मैं भी इस युद्ध का अन्त सहज ही कर सकता हूँ। मैंने सदा अपनी तलवार पर भरोसा रखा है; मैं आत्म-समर्पण करने के बदले अपनी तलवार से अपना काम तमाम कर लेना कहीं अच्छा समझता हूँ।"

"मैं जानता हूँ रणमल्ल, आप प्राणों की कोई परवाह नहीं करते। आपके लिये जीवन और मरण एक समान हैं।" जगजीतसिंह ने कहा।

इसी समय दूर से आते हुए घोड़े की टापें सुनाई पड़ीं और थोड़ी ही देर में दीवार के सूराख से एक नवयुवक घुड़सवार अन्दर आया। वह शस्त्रास्त्रों से अच्छी तरह सज्जित था और तीव्र-वेग से जगजीतसिंह के पास जा खड़ा हुआ।

जगजीत ने विकट भ्रू-विक्षेपपूर्वक उसकी ओर देखा, वह और कोई नहीं, उनकी पुत्री रम्भा थी ।

"इसका क्या मतलब?" जगजीतसिंह ने कठोर स्वर में कहा—"मैं तो तुम्हें कैद कर आया था ।"

"किन्तु मैं किसी तरह बन्धनमुक्त हो गई । मेरा यहां आना अनिवार्य था । जिसे मैं अपने मन से वरण कर चुकी हूँ, मेरा स्थान ऐसे समय उसके पास होना चाहिये ।"

रम्भा ने यह कहकर रणमल्ल की ओर देखा और चीख उठी । रणमल्ल अत्यन्त अशक्तावस्था में मिट्टी के ढेर की तरह भूमि पर पड़ा था । उसके खून से किले का फर्श सिञ्चित हो रहा था ।

× × ×

रम्भा घुटनों के बल रणमल्ल के पार्श्व में बैठ गई और फिर उसका सिर अपनी गोद में रख लिया । इसके पश्चात् उसने रण-मल्ल के वस्त्र खोल उसके भयङ्कर घाव देखे । वह उन घावों को साफ कर उन पर पट्टी बांधना चाहती थी । उसकी आंखों में आंसू थे । जिस समय रम्भा ने रणमल्ल का कमरबन्द खोला तो उसमें उसकी भेजी हुई जयमाला मुरझाई हुई लिपटी मिली । इस माला को देखकर उसकी हार्दिक भावनायें और जागृत हो उठीं । जब रम्भा ने अपनी कोमल अंगुलियों से उस माला का स्पर्श किया, तो रणमल्ल की मुंदी हुई आंखें खुल गईं । उसने रम्भा को फिर उसी तरह देखा जिस प्रकार स्वयम्वर के समय छद्मवेश में आकर देखा था । उस समय वह जयमाला नई थी;

उसके अर्द्ध-विकसित फूलों की पंखड़ियां बिलकुल ताज़ा थीं।

रणमल्ल बड़े प्रयत्न से रम्भा से दृष्टि मिलाकर मुस्कराया। रम्भा ने इतनी देर तक अपने कठोर पिता को शान्त देख उनकी ओर आश्चर्यपूर्वक देखा। जगजीतसिंह के चेहरे पर आज वह कोमलता दिखाई दे रही थी जो उनके जीवन में कभी दिखाई न पड़ी थी।

"यह जीवित हैं, पिता जी।" रम्भा ने धीरे से कहा।

"हाँ, बेटी! रणमल्ल अभी विजयनगर का और मेरे बाद जयनगर का राज्य करने के लिये जीवित हैं।"

बदला

दिन-भर विवाह की तय्यारियां होती रहीं। पटका राज्य के शासक आज एक विचित्र उत्तेजना की अवस्था में थे। राज्य की अतिथिशाला में मधुर सङ्गीत का गुञ्जन हो रहा था। सन्ध्या निकट आते ही सारा नगर दीप-मालाओं से अतिशय सुशोभित हो उठा।

एक ऊँचे स्तम्भ पर खड़ा हुआ प्रहरी बरात के आगमन की बाट जोह रहा था। दूल्हे के बरात-सहित नगर में प्रविष्ट होते ही रस्म के अनुसार आतिशबाजियों आदि से सत्कार करने की प्रतीक्षा में लोग खड़े थे। इधर कन्या की सहेलियों और बांदियों ने उसे विवाह की पोशाक पहना दी थी। बालों में मोती गूँथ दिये थे और मणिमुक्ता के आभूषण पहनाने के बाद फूल-माला से सौ गुनी शोभा बढ़ा दी थी। दूल्हन का मुख-मण्डल प्रसन्नता और सन्तोष द्योतक आभा से जाज्वल्यमान हो रहा था। कारण यह था, कि उसे अपना अभिलषित बर प्राप्त हो रहा था।

× × ×

किन्तु ऐसे शुभ-अवसर पर भी कन्या के पिता,—पटकाधिपति के मुखमण्डल पर मुस्कराहट का अभाव था। कई बार उनकी

बेचैन आँखें नगर-द्वार के बाहर जा-जाकर सुदूर क्षितिज की छाया में स्थित पहाड़ी के उस दुर्ग पर जा टिकती थीं, जिसमें भिण्डी-राज्य के नवयुवक राजा श्यामसेन ससैन्य निवास करते थे। अस्ताचलगामी भगवान् अंशुमाली की रक्ताभ किरणें उस धूमिल दुर्ग के ऊर्ध्व भाग को अब भी स्पर्श कर रही थीं।

"अवश्य ही तुकाराव के आने में अब बहुत विलम्ब हो रहा है।" श्रीपटिकाधिपति ने अपने प्रधान मन्त्री को सम्बोधन कर कहा।

"नहीं श्रीमान्," मन्त्री ने कहा,—"बरात के आगमन के लिये जो शुभ मुहूर्त निकाला गया था, उसमें अब भी आधी घड़ी की देर है।"

"जब तक मेरी पुत्री का विवाह तुकाराव के साथ नहीं हो जाता और वह सकुशल अपनी राजधानी को नहीं लौट जाते. तब तक मुझे सन्तोष और सुख नहीं मिल सकता।" वृद्ध राजा ने कहा—"श्यामसेन बड़ा ही भयङ्कर आदमी है। वह इस विवाह को अपना तिरस्कार समझता है। आश्चर्य नहीं, कि वह इसमें कोई उपद्रव खड़ा कर दे। मान लीजिये, उसने तुकाराव की बरात को बीच में ही रोक दिया, तो फिर उसके सैनिकों का मुकाबिला तुकाराव की निहत्थी और बेबस बरात कैसे कर सकेगी ?"

"वह ऐसा करने का साहस कदापि न कर सकेगा श्रीमान् !" मन्त्री ने विनम्र भाव से कहा।

"वह सब कुछ करने का साहस कर सकता है," पटका-नरेश

ने कहा—"एक समय था, जब मैं चाहता था, कि अपनी लड़की—रमणी की बात न सुनूँ और उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध श्यामसेन से कर दूँ। वह दामाद और पति होने के नाते को अच्छी तरह निभा सकता था; किन्तु शत्रु के रूप में तो वह बड़ा ही भयंकर सिद्ध होगा।"

\+ \+ \+

सहसा प्रहरी ने उच्च स्तम्भ पर से उच्चस्वर से पुकार कर कहा—"मैं नगर-द्वार में एक बड़ा जुलूस प्रविष्ट होते देख रहा हूँ।"

क्षण भर में यह समाचार चारों ओर फैल गया। लोगों में उत्सुकता और उमङ्ग की तरङ्गें लहरें मारने लगीं। क्षण भर में अग्नि-क्रीड़ा की चमक और ध्वनि से आकाश मुखरित हो उठा। बाजे-गाजों की तुमुल-ध्वनि से एक बार सारा नगर आसन्न वैवाहिक आनन्द में हिलोरें लेने लगा। पटका-नरेश महमानों सहित दूल्हे की द्वार-पूजा करने के लिये राजमहल के मुख्य द्वार की ओर बढ़े। किन्तु द्वार पर पहुँच कर वह ठिठके। अब तक उनके मुख-मण्डल पर प्रसन्नता और मुस्कराहट की जो चमक थी, वह लुप्त हो गई।

"सुनिये", पटकाधिपति ने अपने पार्श्ववर्त्तियों से कहा—"मुझे खटका है! क्या बरात इसी तरह आया करती है?"

बात यह थी, कि आगत क्षत्रियों का वह जुलूस उस मन्दगति से नहीं आ रहा था, जिस गति से बरात कन्या के द्वार पर आया करती है। दूल्हे की घोड़ी उस अल्हड़पन से न चलाई जा रही

थी, जो बरातों में दिखाई दिया करती है। आगतों में आनन्द-जनक शैथिल्य का लेश भी न था। घोड़ों की टापें द्रुतवेग से आगे बढ़ती हुई सुनाई दे रहीं थीं। उसे सुनकर आगे बढ़े हुए लोगों को भय-वश आगत आरोहियों का मार्ग साफ़ कर देना पड़ा।

यह आशुगामी जुलूस थोड़ी ही देर में महल के आंगन में आ उपस्थित हुआ। जुलूस क्या था; घुड़सवार सेना का लम्बा तांता था, जो समाप्त होने ही को न आता था। इस अश्वारोही दल के आगे-आगे अपनी अलवेली घोड़ी पर सवार वह व्यक्ति था, जिस पर पटका-नरेश की परिचित किन्तु रोषपूर्ण दृष्टि पड़ रही थी। पटका-धिपति के निकट आकर वह आगत नवयुवक घोड़ी से उतर पड़ा और दोनों ने इस प्रकार दृष्टि मिलाई जैसे जङ्गल में दो विरोधी व्याघ्र एक दूसरे पर क्रोधपूर्ण नज़र डालते हैं।

"श्यामसेन!" वृद्ध नरेश ने आगत नवयुवक से साश्चर्य पूछा—"ऐसे अवसर पर आपका आना कैसे हुआ? मेरी पुत्री के विवाहोत्सव पर बिना आमन्त्रण के आप कैसे आ गये? यदि आप यहां कोई उपद्रव करने न आये हों, तो मैं आपका स्वागत करता हूँ।"

भिण्डी के शासक श्यामसेन ने वृद्ध राजा की ओर अविचलित नेत्रों से देखा। ऐसा प्रतीत होता था, कि इन बातों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उसका मन पूर्ववत् दृढ़ बना रहा।

"मैं न तो सुलह करने आया हूँ और न युद्ध करने; पटका-धिराज!" नवयुवक ने कहा—"मैं तो आपकी पुत्री रमणी को

पत्नीरूप में हरण करने आया हूँ।"

वृद्ध राजा की भवें तन गईं।

"क्या आपको उन्माद हो गया है?" उन्होंने कहा—"मेरी पुत्री का विवाह तो राजा तुकाराव से होने वाला है।"

"यह कभी न होगा", श्यामसेन ने कहा—"रमणी होगी तो मेरी पत्नी होगी। सगाई तो आप मेरे साथ कर ही चुके थे; बाद में सहसा आपने विचार बदल दिया और तुकाराव के साथ सगाई कर दी। इससे क्या होता है? पहला दावा मेरा है।"

"मैंने किसी लोभवश या आपकी अप्रतिष्ठा करने के विचार से ऐसा नहीं किया। मेरी लड़की ने ही मुझ से प्रार्थना की थी, कि वह उसी से विवाह करना चाहती है, जिसे वह हृदय से चाहती है। आपको तो उसने अच्छी तरह देखा भी न था। मुझे विवश होकर ही अन्त में उसकी बात मानना पड़ी। वह मेरी एकमात्र पुत्री है और उसकी माता इस संसार में नहीं,।"

"आप चाहे जो बहाना करें, मुझे उसकी पर्वा नहीं," श्यामसेन ने कहा,—"क्या आप समझते थे, कि मैं केवल मौखिक विरोध करके ही चुप हो जाऊँगा। मैं क्रियात्मक विरोध करने वाला व्यक्ति हूँ।"

"आप रमणी को नहीं ले जा सकते।" पटका नरेश ने कहा।

"मैं तो आया ही इसी उद्देश्य से हूँ" श्यामसेन ने कहा—"आप अपनी तलवार म्यान ही में रहने दीजिये। मैं अपने से तिगुनी अवस्था वाले व्यक्ति से लड़ना नहीं चाहता। मैं आपके

पास इतनी सेना लेकर आया हूँ, जो आपकी तथा तुकाराव की सैन्य से कहीं अधिक प्रबल और बहुसंख्यक है। यदि आप अपनी पुत्री सीधे तौर से मुझे न सौंपोगे, तो मैं सारे पटका-राज्य को तलवार के घाट उतार दूँगा।"

× × × ×

वृद्ध राजा ने श्यामसेन को घूरते हुए कहा—"मेरे सभी प्रजा-जन क्षत्रिय हैं। हम अपनी जाति का अन्तिम रक्त-बिन्दु बहा कर अपनी प्रतिष्ठा बचायेंगे; पर आत्मसमर्पण न करेंगे। समझे, श्यामसेन!"

श्यायसेन के मुख-मण्डल पर अब भी पूर्ववत् गम्भीरता छाई हुई थी, जिससे प्रतीत होता था, कि वह पूर्ववत् दृढ़ है।

"तो फिर यही सही, पटकाधिराज," उन्होंने कहा,—"आप की यह इच्छा पूरी होगी।"

यह कह कर श्यामसेन अपने सैनिकों को आदेश करने के लिये पीछे की ओर मुड़े। इसी समय मेहमानों की भीड़ चीरती हुई रमणी अपने पिता के आगे आ गई। उस समय विवाह के वस्त्रा-भूषणों में रमणी का सौन्दर्य अद्भुत छटा दिखा रहा था। वह पिता के पास ही न रुक कर श्यामसेन की ओर बढ़ी।

"ठहरिये," रमणी ने दृढ़ता और वीरता के स्वर में श्यामसेन से कहा,—"इस बात का निर्णय मैं स्वयं करूँगी। क्या मेरे लिये मेरे पिता का राज्य नष्ट होगा? क्या उनके सहस्रों सैनिक मेरे लिये काल के गाल में जायँगे? मैं यह न होने दूँगी। मेरे स्वामी,

मैं अपनी इच्छा से तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ। मैं स्वयं आपकी जीवन-सहचरी होना चाहती हूँ।"

रमणी के सौन्दर्यमय मुख-मण्डल पर सहसा वह आभा देखकर श्यामसेन गद्गद् हो उठे।

"तुम अपने पिता की सुयोग्य पुत्री हो," श्यामसेन ने कहा—"मेरे निकट आ जाओ।"

"नहीं," पटका नरेश ने गर्जन कर कहा—"बेटी, तुम आगे न बढ़ना। मैं तुम्हें रोकता हूँ।"

किन्तु रमणी ने अपना बाहुपाश श्यामसेन की ओर बढ़ा दिया। श्यामसेन ने बड़ी ही आसानी से उसे घोड़ी की पीठ पर चढ़ा लिया और पीछे खुद सवार हो गये।

× × × ×

"मेरा निश्चय पूरा हो चुका और अब उसे पिता जी भी बदल न सकेंगे।" रमणी ने उच्च स्वर से कहा—"मैं और कर ही क्या सकती थी। किन्तु श्यामसेन, मैं सब को सुना कर आप से एक बात कहती हूँ। वह यह है, कि आप सावधान रहें। आज मैं जिस व्यक्ति से व्याही जाने वाली थी, उसके प्रतिशोध का खयाल आपको न आया। तुकाराव का राज्य आपके राज्य के सामने बहुत छोटा है सही; पर वह हम दोनों से बदला लेने का प्रयत्न अवश्य करेगा।"

श्यामसेन हँसे। "मुझे इसका बिल्कुल भय नहीं," उन्होंने कहा—"पटकाधिपति, अब मैं विदा लेता हूँ।"

श्यामसेन ने अपने सैनिकों को उच्च स्वर से आदेश किया और घोड़ी के एड़ लगाई। क्षण भर में वह विशाल अश्वारोही सैनिक दल हवा से बातें करने लगा और नगर की सड़कों तथा द्वारों को पार कर, राजा तुकाराव की बरात पटका आने के पहले ही अपने दुर्ग के निकट जा पहुँचा।

अपने महल में पहुँच कर श्यामसेन ने रमणी के साथ वैदिक विधिवत् विवाह कर लिया। तुकाराव से विवाह करने के लिये रमणी ने जो वस्त्राभूषण पहने थेः उनका उपयोग श्यामसेन के विवाह के समय हो गया। रमणी ने वैवाहिक संस्कार में गम्भीरतापूर्वक भाग लिया। उसकी आँखें प्रतीक्षा का सन्देश दे रही थीं। श्यामसेन उसके गम्भीरतापूर्ण सौन्दर्य पर मुग्ध हो रहे थे!

विवाह के दूसरे दिन रमणी ने श्यामसेन की पटरानी का पद-भार ग्रहण किया। उसने सच्ची हिन्दू रमणी की भांति पति की आज्ञाओं को शिरोधार्य किया। उनका व्यवहार स्नेह और आकर्षण से परिपूर्ण था। किन्तु पति जानते थे, कि रमणी के हृदय में कोई विशेष बात तीर की नोक की भाँति चुभ रही थी। उस बात के सम्बन्ध में दोनों में केवल एक ही बार चर्चा हुई। एक दिन रमणी महल के झरोके से उस घाटी की ओर देख रही थी, जिसके उस पार पटका-राज्य के दूसरे छोर पर तुकाराव के दुर्ग की धूमिल छाया दिखाई दे रही थी।

"तुम्हें अब भी आशङ्का है, कि वह तुम्हारे पास आयेगा।" सहसा श्यामसेन ने पीछे से आकर रमणी को लक्ष्यकर कहा।

यद्यपि श्यामसेन की बात में कटुता की पुट थी, पर वह कही मधुर स्वर में ही गई थी।

"मुझे कोई आशंका नहीं है, स्वामी।" रमणी ने अविचलित भाव से कहा—"मेरा विश्वास है।"

"मैं भी उनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" श्यामसेन ने कहा।

धीरे-धीरे दिन बीतते गये। विवाह के बाद जब दूसरी पूर्णमासी आई, तो प्राचीन प्रथानुसार दुलहिन की ओर से ब्राह्मण-भोजन की व्यवस्था की गई। इस भोज में सम्मिलित होने के लिये दूर और निकट की विप्र-मंडलियाँ राजमहल में आने लगीं। युवक और वृद्ध, सम्पन्न और निर्धन, धूर्त्त और निश्छल सभी तरह के ब्राह्मण आने लगे। राह के भिखारी से लेकर मन्दिर-मठों के महन्त तक इस विशाल भोज के अवसर पर आये; क्योंकि इस उपलक्ष्य में सबको अभीष्ट दान दिया जाता था।

× × × ×

भोज आरम्भ हुआ। रमणी अभ्यागतों के आतिथ्य-सत्कार और भोजन कराने की व्यवस्था में व्यस्त हो रही थी। उसकी सहेलियाँ भी इस कार्य में उसे सहयोग दे रही थीं। रमणी की प्रधान बांदी ने भोजन करने वाले ब्राह्मणों की पंक्ति को देखते हुए यह लक्ष्य किया कि कोने में बैठा हुआ एक व्यक्ति भोजन नहीं कर रहा है। उस व्यक्ति ने साधु-भेष धारण कर रखा था और वह सिर नीचा किये चुपचाप बैठ था। उसके समक्ष रजत-

पात्र में पिरसा हुआ भोजन ज्यों का त्यों रखा हुआ था। राजपूतों के आतिथ्य में यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार पंक्ति में बैठ कर भी भोजन करने से इन्कार कर दे, तो इससे उनकी अप्रतिष्ठा समझी जाती है। रमणी तत्काल उस व्यक्ति के पास जा पहुँची।

"क्या भोजन आपके इच्छानुकूल नहीं, साधुजी;" रमणी ने विनम्र भाव से कहा—'या आप कोई अभीष्ट दान लेकर तब भोजन करना चाहते हैं?"

साधु ने सिर उठाकर रमणी की ओर देखा; किन्तु उसने मुँह से कुछ न कहा। रमणी ने जो उसका चेहरा देखा, तो सहम कर पीछे हट गई। उसके मुँह से सहसा अतिथि का नाम निकलने ही वाला था कि वह सँभल गई। वास्तव में यह साधुवेषधारी अभ्यागत और कोई नहीं, राजा तुकाराव था।

क्षण भर चुप रहने के बाद रमणी ने धीरे से कहा—"तुम! यहाँ?"

"क्या तुम्हें यह आशा न थी, कि मैं किसी-न-किसी तरह यहाँ आऊँगा ही"—तुकाराव ने धीरे से कहा। उसका मुखमण्डल वीतराग संन्यासी की भांति निर्लेप बना हुआ था; किन्तु उसकी आंखों में एक प्रकार की उष्णिमा थी।

"मैं पटका से आने के बाद से ही यह बात जानती थी कि तुम आओगे; किन्तु मुझे यह आशंका न थी, कि तुम छद्मवेश धारण कर आओगे।" रमणी ने कहा।

"मैं और किस रीति से आ सकता था?" तुकाराव ने कहा—"यदि श्यामसेन को हमारी-तुम्हारी इस बातचीत का पता

लग जाये, तो हम दोनों की ही जान की खैर नहीं। चुप रहो, तुम्हारी बांदी इधर देख रही है। मैंने सब योजना बना ली है। कल पौ फटने के पहले ही जनाना ड्योढ़ी के पार्श्वस्थित बाटिका के फाटक पर आ जाना। शहर के बाहर मैं दो घोड़ों का प्रबन्ध कर रखूँगा। हम दोनों सुबह के सन्नाटे में चुपचाप निकल चलेंगे। भिण्डी में किसी को कानोकान इसकी खबर न होगी।"

रमणी चुपचाप तुकाराव की बातें सुनती रही। इसी समय उसकी बांदी उसके निकट आती हुई दिखाई दी।

"आओगी ?" तुकाराव ने धीरे से पूछा।

"हां !" रमणी ने उत्तर दिया।

× × ×

पूर्णिमा का पूर्णचन्द्र अस्तोन्मुख हो रहा था। नक्षत्रों की आभा मलिन होने जा रही थी। प्रत्यूष की उसी छाया में रमणी महल से जनाना बाग की ओर लपकी जा रही थी। उसने अपने पांव से पाज़ेब निकाल दिये थे, जिससे उसकी पदध्वनि सुनाई न देती थी। बाटिका में प्रभातागमन की पूर्ववर्त्ती शोभा का साम्राज्य छाया हुआ था। फव्वारे इस निशीथ की शान्ति भङ्ग करने के लिये हल्का और कर्णमधुर स्वर सुना रहे थे। ओसकण के मोतियों से गुँथे हुए दूर्वादल धरित्री के परिधान की शोभा बढ़ा रहे थे। शान्ति के इस साम्राज्य में प्रवेश कर रमणी सावधानी से आगे बढ़ी। फाटक खोलकर बाहर निकलते ही उसने देखा, कि तुकाराव वहाँ आ पहुँचा है। इस अवसर पर वह छद्मवेश में न था। इस समय उनके वस्त्राच्छादन से यही सिद्ध होता था, कि वह कोई साधारण यात्री है।

"रमणी, मैं जानता था, कि तुम आओगी और अन्त में मेरी बनोगी।" तुकाराव ने कहा।

तुकाराव रमणी को अपने बाहुपाश में आबद्ध कर प्रगाढ़ आलिङ्गन करने वाला ही था, कि वह पीछे हट गई।

"मेरी प्यारी रमणी आओ। तुम यदि जानती कि मैं इस क्षण की प्रतीक्षा किस बेचैनी से कर रहा था!"

"और मैं भी इसी घड़ी की प्रतीक्षा में व्याकुल थी," रमणी ने कर्कश स्वर में कहा—"किन्तु मैं स्वप्न में भी न जानती थी," कि यह अवसर इस प्रकार आयेगा।"

तुकाराव ने रमणी की ओर देखा। उसकी समझ में रमणी की बात न आई।

तुम्हारे ऐसा कहने का अभिप्राय क्या है, रमणी?" तुकाराव ने पूछा।

"तुम्हें मेरा अभिप्राय भलीभांति समझना चाहिये।" रमणी ने कहा।

सहसा उसकी आंखें बिजली की तरह प्रदीप्त हो उठीं। उसका कर्कश कण्ठस्वर और उच्च हो उठा—"मेरे स्वामी ने मुझे तुमसे बलपूर्वक अपहरण किया है। तुम्हें चाहिये था, कि समय पर एक वीर पुरुष की भांति तुम भी अपने प्रतिद्वन्द्वी से आकर मुकाबला करते। इस प्रतिशोध में तुम्हें मरना भी पड़ता, तो क्या हर्ज था। और यदि तुम अपने विरोधी को पराजित करने में सफल होते तो मैं लोक-परलोक सब की मर्यादा छोड़कर गर्वपूर्वक तुम्हारा

वरण करती। किन्तु तुम यहां योद्धा की तरह नहीं, कायर की तरह चुपके-से और वेश बदल कर आये और अब मुझे इस कायरता की योजना में भाग लेने को कह रहे हो। यह कदापि नहीं हो सकता। मेरे सम्बन्ध में तुमने ऐसी धारणा ही क्यों की? यह मेरा घोर तिरस्कार है—इसका बदला मैं खून बहाकर ही ले सकती हूं!—लो!"

चन्द्रमा के प्रकाश में रमणी की कटार कौंदकर तुकाराव के कलेजे में घुस गई। तुकाराव वहीं ढेर हो गया।

रमणी ने पीछे मुड़कर देखा तो श्यामसेन खड़े थे। उनके पीछे वृक्षों की छाया में रमणी की वह बांदी भी खड़ी थी, जिसने सम्भवतः भेदिये का काम कर श्यामसेन को वहां ला उपस्थित किया था।

रमणी ने निर्भीक भावना से श्यामसेन की ओर देखा।

"मैंने एक ऐसे चोर की हत्या कर डाली है जो मेरी प्रतिष्ठा की चोरी करने आया। चलिये, महल में चलें, स्वामी!"

विजय-यात्रा

(१)

सम्राट् अग्निमित्र के सिंहासन में दो स्वर्णनिर्मित सिंह लगा कर उसका नाम चरितार्थ किया गया था। सिंहासन चन्दन आदि बहुमूल्य काष्ठ में चित्राङ्कण कर बनाया गया था और उस पर सोने के सुन्दर खुदाई-वाले सुचित्रित पत्र जड़े थे। इस सिंहासन-के ऊपर जो छत्र था वह भी सोने का था और उसमें ज़री का दर्शनीय काम किया गया था। सम्राट् इस सिंहासन पर परम प्रकाशवान् रत्नों से जड़ा राजमुकट धारण कर बैठते थे। राज-मुकुट के अतिरिक्त सम्राट् के गले में रत्नजटित बहुमूल्य हार और बांहों में जड़ाऊ भुजदण्ड थे। सम्राट जो व्याघ्राम्बर धारण करते थे उस पर भी रत्नजटित कटिबन्ध जगमगाता था।

सम्राट् ने एक दर्बार में राज्य के सभी सर्दारों और परामर्श-दाताओं को बुलाया था। इस दर्बार में गुरु पुरोहित, साधु-महात्मा और बड़े-बड़े धुरन्धर ज्ञानी-विज्ञानी भी आमन्त्रित हुए थे। इनके अतिरिक्त सम्राट् की सेना के प्रमुख अधिकारी अपने धनुष-तूणीर सहित उपस्थित थे। सम्राट् के दोनों पुत्र—वसुदेव और कपिल भी इस अवसर पर उपस्थित थे। ज्येष्ठ पुत्र वसु-

देव का मुखमण्डल गम्भीर तथा शौर्ययुक्त था और कनिष्ठ कपिल का उत्सुकता-संयुक्त।

सम्राट् ने दर्बार में उपस्थित सर्वसज्जनों को सम्बोधन कर कहा—"मैं आप सब को इस दर्बार का अभिप्राय बताता हूँ—मुझे शासन करते तीस वर्ष व्यतीत हो गये। यूनानी आक्रमणकारियों के लौट जाने के बाद मेरे शासनाधीन भूभाग पर फिर किसी ने आक्रमण करने का साहस नहीं किया, इसके अतिरिक्त मेरे साम्राज्य के पार्श्ववर्त्ती सभी छोटे-छोटे राज्य अधीनता स्वीकार कर चुके हैं। जो इने-गिने राज्य अभी तक स्वतन्त्र होने का दम भरते हैं, वह भी मेरे कोप-भाजन होने से बचते रहते हैं। यह सब तो हुआ; पर अब मैं युवा नहीं हूँ। किन्तु शरीर में प्राण रहते मैं एक बार इन सब राजाओं का सम्राट् बन जाना चाहता हूँ और यह बात उनसे सार्वजनिक रूप में स्वीकार करवा लेना चाहता हूँ, क्योंकि यदि ऐसा न हुआ, तो मेरी मृत्यु के बाद हमारे विरोधी साम्राज्य उन्हें अपना ग्रास बना लेंगे। मैं जानना चाहता हूँ, कि क्या आप लोग मेरे इस कथन को सत्य समझते हैं ?"

"बिल्कुल सत्य है महाराज !" सम्राट् के परामर्शदाता दर्बारियों ने सिर हिलाते हुए कहा।

अग्निमित्र—तो फिर अब मैं अश्वमेध यज्ञ करूंगा और अपने को भारत का एकछत्र-सम्राट् घोषित करूँगा।

× × × ×

भारत के प्राचीन इतिहास में राजाओं द्वारा अश्वमेध यज्ञ

करने की प्रथा एक विशेष महत्त्व रखती थी। यह यज्ञ करने वाला राजा चक्रवर्ती माना जाता था। यह यज्ञ करने वाला शासक अपनी राजधानी से एक घोड़ा छोड़ता था। यह अश्व जन्म से ही इसी महत्त्व-मण्डित कार्य के लिये पाला जाता था। इस घोड़े पर न तो कभी कोई सवार होता था, न कोई बोझ लादा जाता था। राज-पुरोहित आवश्यक रस्म के बाद इस घोड़े को छोड़ते थे। इस अश्व के साथ राज्य के रक्षक घुड़सवार भी जाते थे। एक वर्ष तक यह अश्व स्वतन्त्र रूप में इधर-उधर घूमता फिरता था। लोगों का ऐसा विश्वास था, कि इस घोड़े का पथ-प्रदर्शन ईश्वरीय शक्ति करती थी। जहां जहां इस घोड़े की पवित्र टाप पड़ती थी वहां उनके स्वामी का राज्यधिकार हो जाता था। यदि कोई उस अश्व के स्वामी राजा का विरोधी बनता था तो उसे तलवार के घाट उतार कर राज्याधिकार का दावा सिद्ध कर दिया जाता था। वर्ष समाप्त हो जाने पर वह अश्व बड़ी धूमधाम के साथ वापस लाया जाता था और अश्वमेध यज्ञ की क्रिया सम्पन्न की जाती थी।

सर्दारों और परामर्शदाताओं में एक वृद्ध पुरुष थे जिनके केश श्वेत हो चुके थे। उन्होंने अपने वार्द्धक्यपूर्ण क्षीण स्वर में कहा—"श्रीमान् का यह निश्चय बुद्धिमत्तापूर्ण है; किन्तु इस पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिये किसे चुना जायगा ?"

"मेरे कनिष्ठ पुत्र महाराजकुमार कपिल।" सम्राट् ने कहा।

कपिल ने हर्षातिरेक से सिंहासन के सामने झुककर सम्राट

को प्रणाम किया। उन्हें इतना बड़ा सम्मान होने की आशा न थी।

"मेरे प्रिय वत्स," महाराज ने आशीर्वादपूर्वक कहा—"तुम जानते हो, कि अश्वमेध यज्ञ का कार्य कितने महत्त्व और उत्तर-दायित्त्व का है। जो कोई इस महान् कर्त्तव्य के लिये तय्यार होता है उसे जानना चाहिये, कि यज्ञाश्व के साथ जाने में कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे अपने स्वामी के अधिकारों की रक्षा आवश्यकता पड़ने पर प्राणों की आहुति देकर करना पड़ती है। उसे क्षण भर के लिये भी यह नहीं भूलना चाहिये, कि यज्ञाश्व कितना पवित्र जीव है। उसकी पवित्रता की रक्षा पर ही अश्वमेध यज्ञ की सफलता निर्भर करती है। अपना रक्त बहाकर इस अश्व की रक्षा करने की भावना रक्षक में होना चाहिये। रक्षक का कर्त्तव्य होता है, कि वह किसी का अपवित्र हाथ इस अश्व को न लगने दे। यह कोई साधारण कार्य नहीं है; किन्तु मैं तुम्हें सर्वथा इसके योग्य समझता हूँ इसलिये यह भार तुम्हें सौंपता हूँ।"

"पितृदेव, मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर इस कार्य को सम्पन्न करूँगा;" महाराजकुमार कपिल ने दृढ़तापूर्ण स्वर में कहा, "मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। मैं समझता था, कि यह सम्मान मेरे ज्येष्ठ भ्राता वसुदेव को प्राप्त होगा।"

"वसुदेव ने अपना शौर्य युद्ध में प्रदर्शित कर दिया; किन्तु तुम अल्पवयस्क हो; अतः तुम्हें अभी अपनी क्षमता सिद्ध करना

है," सम्राट् ने कहा—"किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है, कि तुम्हें सफलता मिलेगी।"

ज्योतिषियों के मुहूर्त्त-शोधन के पश्चात् निश्चित दिन और निर्धारित समय पर अश्वमेध यज्ञ की आरम्भिक क्रिया सम्पन्न हुई। प्रभात होते ही घण्टे-घड़ियालों की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। नर-नारी नगर-द्वारों पर एकत्रित होने लगे। अश्वशाला से अश्वमेधाश्व लाया गया। इस घोड़े के अङ्ग-अङ्ग से सौष्ठव टपकता था—रङ्ग दूध-सा श्वेत था; मस्तक उच्च, आंखें चमकती और आगे झुकी हुई; कनौठी मिलती हुई और पूँछ ऊपर उठी हुई। यज्ञ पुरोहित ने इस परम आकर्षक अश्व को पुष्पमाला पहनाई और उस पर केसर-जल छिड़कने के पश्चात् तिलक किया। श्वेत अश्व के सुन्दर मस्तक पर केसरिया तिलक अद्भुत शोभा दे रहा था। इस अश्व का रक्षक दल पास ही खड़ा था। इस दल में महाराज कुमार कपिल की अध्यक्षता में एक सहस्र से अधिक योद्धा थे जो धनुष-बाण और बर्छियों से लैस थे। यह लोग लम्बी यात्रा के लिये सब साधनों से प्रस्तुत थे। महाराजकुमार कपिल के आदेशानुसार इस सेना के प्रधान-पद पर वीर छत्रपति नियुक्त हुए थे। इस दल के साथ एक ब्राह्मण पुरोहित भी था।

× × × ×

कपिल ने अपने पिता के चरणों में मस्तक नवाया और अग्निमित्र ने उन्हें गम्भीरतापूर्वक आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् द्वार खोल दिये गये और अग्निमित्र ने स्वयं घोड़े को कुछ दूर तक

रक्षक दल के साथ पहुँचाया। कपिल उस अश्वारोही दल में सब से आगे थे। वीरता का उच्च सम्मान प्राप्त करने के कारण उनका हृदय हर्ष-विह्वल हो रहा था। नगर-निवासी जय-जयकार की ध्वनि के साथ उन्हें विदाई दे रहे थे।

क्षण-भर में यह अश्वारोही दल यज्ञाश्व के पीछे-पीछे मुक्त वायु के झकोरों की तरह उड़ता-सा दिखाई पड़ा। यज्ञाश्व के पीछे थोड़े ही फासले पर महाराज कुमार कपिल का घोड़ा दौड़ रहा था और उसके पीछे वह विशाल अश्वारोही दल। रक्षक दल का यज्ञाश्व की प्रत्येक गतिविधि की ओर ध्यान था। जिस-जिस भूखण्ड से होकर वह जाता उस-उस पर यह दल अच्छी तरह दृष्टि डाल कर चलता था। जिस राज्य में होकर यह घोड़ा गुजरता था, उसके शासक को उसकी सूचना दे दी जाती थी। रक्षक-दल यज्ञाश्व की गति में कोई बाधा न डाल उसका अनुसरण मात्र करता था; किन्तु वह यह अवश्य देखता जाता था, कि कोई उस अश्व को हानि न पहुँचाये और किसी की कुदृष्टि उस पर न पड़े। कोई लोलुप या चोर उस पर अपनी लुब्ध-दृष्टि न डाल सकता था। जहां चरने के लिये भूमि में पर्याप्त शस्य का अभाव होता था, वहां यज्ञाश्व को रक्षक-दल अपने पास से खिलाता-पिलाता था। दूसरे राज्यों के कर्मचारियों और अन्य पशुओं से उसकी रक्षा की जाती थी। इस प्रकार महाराज कुमार सफलतापूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे।

आरम्भ में रक्षक दल अपना कार्य सुचारुरूप में सम्पन्न करता

रहा। यज्ञाश्व राजस्थान से गुजरते हुए बुन्देलखण्ड गया और वहां के दो राज्यों को सम्राट् अग्निमित्र का अधीनस्थ बना लिया। बुन्देलखण्ड से यज्ञाश्व गुजरात की ओर बढ़ा। इस प्रदेश में भी रक्षक दल को विशेष कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ा। गुजरात से यज्ञाश्व विदर्भ देश की ओर मुड़ पड़ा। यहां आकर वयस्क और अनुभवी सेनापति छत्रपति ने महाराज कुमार कपिल से एकान्त में कुछ बातचीत की।

× × × ×

"महाराज कुमार, यहां मुझे विशेष उपद्रव की आशङ्का है। विदर्भ राज्य है तो बहुत छोटा; किन्तु इसकी स्वातन्त्र्य-प्रियता प्रख्यात है। इसके शासक वृद्ध राजा सिन्धु हैं। वह भरसक सम्राट् की सत्ता का विरोध करेंगे।" छत्रपति ने कहा।

"तो क्या वह युद्ध करेंगे?" कपिल ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—

"अवश्य ही, महाराज कुमार!" सेनापति छत्रपति ने कहा।

"अच्छी बात है; हम भी युद्ध के लिये तय्यार ही हैं;" कपिल ने निर्भीकतापूर्वक कहा। अभी तक महाराज कुमार को इस यज्ञाश्व-यात्रा में कोई गम्भीर युद्ध नहीं करना पड़ा था। उन्हें युद्ध का अनुभव नहीं था; पर अपना शौर्य सिद्ध करने की महत्त्वाकांक्षा अवश्य थी। अपनी बात जारी रखते हुए उन्होंने फिर कहा— "किन्तु पहले हमें शान्तिपूर्ण प्रयत्न कर लेना चाहिये।"

सेनापति छत्रपति को अपने पार्श्व में कर महाराज कुमार कपिल विदर्भ की राजधानी की ओर बढ़े। उनकी सेना कुछ अन्तर

पर उनका अनुसरण कर रही थी। किन्तु जब वह नगर के निकट पहुँचे, तो उन्होंने देखा, कि विदर्भ-नरेश की सेना प्राचीर के बाहर युद्ध के लिये प्रस्तुत है। विदर्भ सेना ने आव देखा न ताव; आगन्तुकों को निकट आते देख उन पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। यद्यपि नगर की चारदीवारी के बाहर नियुक्त राजा सिंधु की सेना संख्या में अधिक न थी; पर वह युद्ध में कुशल थी। वह सहसा सम्राट् अग्निमित्र की सेना पर टूट पड़ी। कपिल की सेना पहले तो इस आकस्मिक आक्रमण से आश्चर्यान्वित हुई; पर बाद में वह भी सम्भल गई और उसने विदर्भ की सेना का आक्रमण का जवाब वैसे ही भयंकर प्रत्याक्रमण से दिया। कपिल में क्षत्रियोचित वीरता तो थी ही; साथ ही इस संघर्ष में कुछ कर दिखाने की महत्वाकांक्षा भी थी। उन्होंने ऐसी जगह बढ़ कर युद्ध करना आरम्भ किया जहां शत्रु-दल सबसे अधिक प्रबल वेग से आक्रमण कर रहा था। वृद्ध सेनापति छत्रपति कपिल का यह कौशल देख मुस्कराया; वह मन ही मन प्रसन्न था, कि बालक कपिल अब वयस्क क्षत्रियों के सदृश शौर्य प्रदर्शित कर रहा है।

युद्ध का वेग बढ़ता ही गया। कभी विदर्भ-पक्ष के कुछ सैनिक आगे बढ़े आते थे तो कभी कपिल की सेना उनके बीच तक पहुँच जाती थी। किन्तु परिणाम को देखते हुए यही प्रतीत होता था कि मैदान सम्राट अग्निमित्र की ही सेना के हाथ रहेगा। इसी समय सहसा राजकुमार कपिल ने देखा कि विदर्भ की सेना के पीछे एक छरहरे बदन का युवक घोड़े पर सवार खड़ा है। उसने जिरह-

बख्तर पहन रखा है; पर तलवार हाथ में होते हुए भी वह किसी से लड़ नहीं रहा है। वह कभी अपने घोड़े को एक ओर ले जाता है, तो कभी दूसरी ओर; पर आगे नहीं बढ़ता। हाँ वह लड़कों के से स्वर में अपने सैनिकों को आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहित कर रहा है।

"निस्सन्देह यह विदर्भ-नरेश का पुत्र है—" कपिल ने मन ही मन सोचा। कपिल के मन में इस युद्ध से बच कर केवल सैनिकों को उभारने वाले युवक को धिक्कारने की इच्छा हुई। उसने यह भी सोचा, कि चलकर इस युवक को एक ही प्रहार में घोड़े से नीचे गिरा दें। वह अपनी तलवार चमकाते हुए घोड़े को एड़ लगा द्रुतवेग से आगे बढ़ा और उस युवक पर ऐसा प्रहार किया, कि उसके लिये आत्म रक्षा करना कठिन हो गया। उसके आत्मरक्षा के प्रयत्न में किसी बात का विलक्षण रूप में अभाव था। यद्यपि वह निर्भीक और तलवार का हाथ चलाने में कुशल प्रतीत होता था; किन्तु कपिल की शक्ति के सामने उसका बल इतना अल्प था, कि वह तलवार के प्रहार के साथ गिरता प्रतीत हुआ। कपिल की तलवार उसके कन्धे में घुस गई और उसकी तलवार हाथ से छूट गई।

× × ×

उसी क्षण कपिल ने आश्चर्य-स्तब्ध होकर यह देखा, कि उस के प्रहार का शिकार लड़का नहीं; लड़की है। चोट खा जाने पर शिरस्त्राणाच्छादित कोमल स्त्री-मुख आरक्त हो ऊपर उठ गया और

फिर उसे देखते ही कपिल को यह समझने में देर ही न लगी, कि विदर्भ के सैनिकों का संचालन-कार्य कोई नवयुवक नहीं, बल्कि नवयुवती कर रही है।

कपिल की तलवार और दृष्टि के प्रहार से आहत कोमलांगी घोड़े से नीचे गिर पड़ी। कपिल भी साथ ही अपने घोड़े से कूद पड़ा। वह कुमारी के सौंदर्य से आकर्षित होने और स्त्री पर प्रहार करने की अपनी भूल को समझ लेने के बाद क्षण-भर के लिये विचलित-सा हो उठा। इस लड़की के साहस के प्रति कपिल के मन में प्रशंसा के भाव उत्पन्न हुए। इस समय उसने उस लड़की को खतरे से बचाना ही अपना कर्त्तव्य समझा। वह कोमलाङ्गी युवती मूर्छित हो ज़मीन पर गिर पड़ी थी।

"राजकुमारी को मार डाला।" सहसा विदर्भ सेना के अनेक सैनिकों ने चिल्ला कर कहा।

(२)

राजकुमारी के मारे जाने की सनसनी-भरी अफवाह से सहसा विदर्भराज की सेना का साहस टूट गया। वह एकदम भाग खड़ी हुई। कपिल की सेना ने द्रुतवेग से उसे खदेड़ दिया। इस भगदड़ में कपिल का घुड़सवार दल इस उमंग के साथ विदर्भ-सेना के पीछे पिल पड़ा, कि कपिल ने उसके घोड़ों की टापों से राजकुमारी की रक्षा करने में ही सारी शक्ति लगा दी। वह राजकुमारी के शरीर को ढक कर उसे बचाने में लगा रहा। उसे आशंका थी, कि आहत राजकुमारी को ढकने वाला उसका शरीर कब किस घुड़-

सवार के सुमों से रौंद उठे, पर उसने अपने शरीर की पर्वा न की।

यह एक चमत्कार ही था, कि इस भयङ्कर संघर्ष से राजकुमारी और कपिल साफ बच गये। जब सैन्य-दल गुज़र गया, तो राजकुमार कपिल उठे। रणक्षेत्र में अब लाशों के ही ढेर शेष रह गये थे। कपिल के सैनिक अब विदर्भ-नगरी की प्राचीर तक पहुँच चुके थे और वहां गर्द का जो बादल उठ रहा था वह संघर्ष की भीषणता का द्योतक था। राजकुमार कपिल ने घूमकर राजकुमारी की ओर देखा। उसके कन्धे से अब भी रक्त की धारा बह रही थी। कपिल को अब मालूम हुआ, कि उसने राजकुमारी को कैसे गम्भीर रूप में घायल किया है। अब कपिल को राजकुमारी की पीड़ा का अनुभव हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, कि कहीं राजकुमारी शुश्रूषा और परिचार की व्यवस्था होने के पहले ही न चल बसे।

निराश हो कपिल ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। कहीं से कोई सहायता प्राप्त करने की आशा दिखाई न दी। इतने ही में पीछे से किसी घोड़े की निकट आने की आहट सुनाई दी। राजकुमार ने पहचाना वह उन्हीं का यज्ञाश्व था। वह निकट आ कपिल को सुस्निग्ध नेत्रों से देखने लगा। यज्ञ का वह घोड़ा उस खतरे के क्षेत्र में किस प्रकार मजे में टहलता हुआ आ गया इसका अनुमान राजकुमार कपिल न लगा सके। उस समय वह इस प्रकार के असमंजस में पड़ना भी न चाहता था। उस समय तो वह राजकुमारी की रक्षामात्र की भावना से ओत-प्रोत हो रहा था।

सहसा उसने वह भयङ्कर कार्य कर दिखाया जिसके सम्बन्ध में कोई विचार भी नहीं कर सकता। उसने झटपट राजकुमारी को पृथ्वी पर से उठा लिया और एक छलाँग में यज्ञाश्व की नङ्गी पीठ पर सवार हो गया। दूसरे ही क्षण घोड़ा वायुवेग से कपिल के सैन्य-शिविर की ओर दौड़ पड़ा।

× × ×

घोड़े के आने की आहट पा यज्ञ-पुरोहित युद्ध समाचार पाने की आशा से शिविर से बाहर निकला। उसने देखा कि आगन्तुक और कोई नहीं, स्वयं कपिल है; और यह क्या अनर्थ, कपिल उसी पवित्र घोड़े पर आरूढ़ है जिसके लिये यह युद्ध हो रहा है। पुरोहित आश्चर्य-स्तब्ध होकर जहां का तहाँ खड़ा रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। भय के मारे उसका बुरा हाल था।

"भगवान् रक्षा करे! मैं क्या देख रहा हूँ? क्या यह सच है"—

"और कोई उपाय शेष नहीं था, गुरु जी" कहते हुए कपिल घोड़े से उतरा और राजकुमारी को धीरे से ज़मीन पर उतार दिया—"यह विदर्भ की राजकुमारी है। यह भयानक रूप में ज़ख्मी हो गई है और मुझे भय है कि इसका शरीरान्त..."

"राजकुमार क्या आप पागल हो गये हैं। आपको मालूम नहीं कि आपने कैसा घोर अपराध किया है", पुरोहित ने कठोरतापूर्वक कहा—किन्तु कपिल बिना कुछ कहे अपने शिविर-कक्ष की ओर गये। उन्होंने अपने चिकित्सा करने वाले सेवक को बुलाया और

उसे राजकुमारी की शुश्रूषा करने को कहा।

× × ×

राजकुमारी का घाव उतना भयङ्कर नहीं था जितना कपिल ने समझा था। फिर भी, राजकुमार कपिल सारी रात उसकी शय्या के पास बैठे सेवा-शुश्रूषा में लगे रहे। उन्हें एक स्त्री पर अनजाने ही प्रहार करने का पश्चात्ताप हो रहा था। सुपरिचर्या से राजकुमारी जब पूर्णत: होश में आई, तो उन्होंने अपना पूरा परिचय दिया; मैं विदर्भ-नरेश राजा सिन्धु की भतीजी माया हूँ। राजा सिन्धु बहुत वृद्ध होने के कारण लड़ने के योग्य नहीं रहे हैं। राजा सिन्धु ही मेरे एकमात्र सगे सम्बन्धी हैं। विदर्भ की स्वतन्त्रता-रक्षा के लिये सेना की अध्यक्षता मैंने ग्रहण की थी। मैंने विदर्भ-सेना को काफी प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया। यदि मैं पुरुष होती—"

"मुझे प्रसन्नता है, कि आप पुरुष नहीं हैं—" कपिल ने माया के सौंदर्य के प्रति प्रशंसा और आश्चर्यमिश्रित भाव प्रदर्शित कर कहा। कपिल को इस बात की प्रसन्नता थी, कि अन्तत: राजकुमारी बच गई। अब तक उनका सारा विचार उसकी प्राण-रक्षा की ओर लगा था—यहाँ तक कि पवित्र यज्ञाश्व की सवारी कर लेने का अपराध भी उसके *मस्तिष्क के पश्चाद्भाग में* चला गया था। उधर माया ने जब अपने रक्षक को ध्यान से देखा तो उसने उनके प्रति आकर्षण का अनुभव किया।

प्रभात होते-होते सेनाध्यक्ष छत्रपति अपने सैनिकों सहित

शिविर को वापस आ गये। वह इस सन्देश के साथ लौटे, कि राजा सिन्धु ने आत्मसमर्पण कर दिया है। छत्रपति को यह सन्देश लाने में कोई प्रसन्नता नहीं थी, क्यों कि इसके साथ ही वह यह दुःखद समाचार भी लाये थे, कि राजकुमार कपिल रणक्षेत्र से गायब हो गये और ऐसी आशङ्का है, कि वह इस युद्ध में काम आगये। पुरोहित ने छत्रपति को अलग ले जाकर देर तक बातचीत की। थोड़ी ही देर में सारे शिविर में वह समाचार फैल गया जिससे लोग आश्चर्यसागर में गोते लगाने लगे। शीघ्र ही पुरोहित और सेनापति उस शिविर-कक्ष में आये जहां कपिल अब भी आहत राजकुमारी माया की शैया के निकट बैठे थे।

राज्य के दोनों वयोवृद्ध अधिकारियों को आया देख कपिल उठ खड़े हुए। उनके मुँह से सहसा कोई बात न निकली। वह पहले उन दोनों की ओर से कुछ सुनना चाहते थे।

"जो कुछ मैं सुन रहा हूँ, क्या वह सच है, महाराजकुमार!" सेनापति ने कठोरतापूर्वक कहा—"मैं समझता हूँ, कि अवश्य ही लोगों ने अफवाह उड़ाने में कुछ भूल की है।"

"कोई भूल नहीं की।" कपिल ने कुछ दुखित होकर कहा। वृद्ध सेनापति का चेहरा इस प्रकार तमतमा उठा मानो उसके गाल पर किसी ने ज़ोर की चपत जमा दी हो।

"तब तो कुछ कहने की गुञ्जाइश ही नहीं रही। हमारी यात्रा का यहीं अन्त होता है।" सेनापति ने कहा—"यज्ञ के घोड़े की

पवित्रता नष्ट कर दी गई, अतः अब अश्वमेध यज्ञ करना ही व्यर्थ होगा।"

"मैं असफल हुआ! मैंने अपने पिता का नाम कलंकित किया और उनके साथ विश्वासघात किया।" कपिल ने कातर भाव से कहा।

"निस्सन्देह आप से यह अपराध हो गया।" सेनापति ने अपने प्यारे राजकुमार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण स्वर में कहा।

उस समय राजकुमार कपिल की दशा बड़ी ही दयनीय हो रही थी—वह दुःख और लज्जा के मारे गड़ से जा रहे थे। इसी समय माया उनके पास आ गई और उन्हें दुःख-मुक्त करने का प्रयत्न करने लगी।

"आपके पिता सब बातें सुनकर निस्सन्देह आपको क्षमा कर देंगे। वह सब कुछ समझ जाएँगे।" माया ने कहा।

किन्तु राजकुमार कपिल जानते थे, कि उन्हें क्षमा की आशा कहां तक करनी चाहिये।

"किन्तु पहले मैं आपको विदर्भ-राज के पास पहुँचा दूँ।" —कपिल ने कहा।

इसके पश्चात् सैनिकों को साथ ले कपिल ने माया को विदर्भ-राज के दर्बार में पहुँचा देने के लिये प्रस्थान किया। नगर के द्वार और दीवारें भग्नावस्था में थी। राजमहल में पहुँचकर कपिल ने देखा, कि वृद्ध राजा सिन्धु आहत सैनिकों से अपनी नष्ट नगरी

के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं। राजा ने कपिल की ओर क्रोध से देखा।

"क्या अब आप मुझ पर विजय प्राप्त करने आये हैं?" राजा सिन्धु ने राजकुमार कपिल से कहा।

"नहीं विदर्भ-राज! मैं तो राजकुमारी को सुरक्षित रूप में आप तक लौटाने के लिये आया हूँ।"

"और तब जब कि वह सारी रात शत्रु के शिविर में व्यतीत कर चुकी है," वृद्ध राजा ने व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा—"क्या आप समझते हैं, कि अब भी मैं उसे अपने राजमहल में रखूँगा? क्या अब भी इसकी प्रतिष्ठा बाकी है?"

"विदर्भ-राज," कपिल ने कठोरतापूर्वक कहा—"आप अपनी भतीजी के प्रति अन्याय कर रहे हैं। वह मेरे हाथों घायल हुई थी और मैं उसे मूर्च्छितावस्था में अपने शिविर को उठा ले गया था।"

"यह मर गई होती तो अच्छा था।" राजा सिन्धु ने वैसे ही रोष और घृणापूर्ण स्वर में आँखें निकालते हुए कहा—"मेरे लिये वह मर चुकी। इसे यहां से ले जाइये और जहां ले जाना हो वहां जाइये। वह तो आप की हो चुकी है।"

माया ने कपिल की ओर कातर दृष्टि से देखा। राजकुमार कपिल उसकी ओर देखकर गम्भीरतापूर्वक मुस्कराये।

"मैं राजकुमारी को अपने पिता के दर्बार में ले जाऊँगा विदर्भेश!" उन्होंने कहा, "और माया की इच्छा हुई तो मैं उसे अर्द्धांगिनी बनाऊँगा।

(३)

राजकुमार कपिल अपने दल सहित यज्ञाश्व की अपवित्रता और युद्ध के विजय की विषाद एवं हर्षमिश्रित भावना के साथ विदर्भ से वापिस लौटे। कपिल के मन में लज्जा और आत्म-प्रतारणा की भावना विशेष थी इसलिये वह अपने सैन्य-दल से अलग ही अलग चल रहे थे। वह न तो पुरोहित का कठोरतापूर्ण मुँह देखना चाहते थे, न सेनापति का विषादपूर्ण चेहरा; यद्यपि सेनापति छत्रपति उन्हें अपने पुत्र के सदृश मानते थे। केवल माया ही राजकुमार के घोड़े के बराबर अपना घोड़ा आगे बढ़ाती चली जा रही थी। वह राजकुमार के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर रही थी और अपनी कोमल वाणी से उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रही थी। उन दोनों के पार्श्व में ही नंगी पीठ श्वेत यज्ञाश्व चल रहा था। किन्तु इस घोड़े के साथ अब पहले जैसा पवित्रता-पूर्ण व्यवहार नहीं हो रहा था। इस प्रकार वापिसी में निरानन्द भाव से यह दल अग्निमित्र की राजधानी को लौटा।

× × × ×

सम्राट् अग्निमित्र खुले दरबार में सिंहासनासीन हुए थे। उनके मन्त्री और दरबारी उनके आस-पास यथा-स्थान बैठ गये थे। पथ-प्रदर्शक पहरेदारों ने राजकुमार कपिल के प्रत्यागमन का समाचार सम्राट् को आ सुनाया। कपिल अपने दल-बल को बाहर ही छोड़ माया, पुरोहित और छत्रपति को साथ ले दरबार में

आये। अग्नि-मित्र का चेहरा उन्हें इस प्रकार आते देख तमतमा उठा।

"यह क्या है, कपिल। तुम्हें गये अभी दो मास भी नहीं हुए; इतनी जल्दी लौट कर क्या तुम कोई कुसम्वाद सुनाने आये हो?"

कपिल ने सिंहासन के सम्मुख घुटने टेक दिये।

"पिता जी, अघटनीय घटना हो जाने का कुसम्वाद सुनाने आया हूँ। मैंने भीषण पाप कर डाला, और इसमें केवल मेरा ही अपराध है। अश्वमेध यज्ञ असफल हो गया।"

"यह कैसे?" सम्राट् अग्निमित्र ने आतङ्काच्छन्न भाव से पूछा।

"इन महिला को बचाने के लिये मैंने यज्ञाश्व की पवित्रता नष्ट कर दी। यह विदर्भराज की भतीजी हैं। मैंने तलवार मार कर इन्हें घायल कर दिया था। मैंने शीघ्रता में विचार से काम नहीं लिया और इन आहत महिला को यज्ञाश्व पर चढ़ा कर उपचार के लिये सैन्य-शिविर तक पहुँचा।"

यह सुन कर सारा दरबार कांप उठा।

"हम राजपूताना, बुन्देलखण्ड और गुजरात तो बिना किसी चिनौती के पार कर गये। किन्तु विदर्भ-नरेश ने हमारा विरोध किया और युद्ध में हमने उनकी सेना परास्त कर दी। इसी युद्ध के समय यह दुःखपूर्ण घटना घटित हो गई। पिता जी, मेरे दुःख की कोई सीमा नहीं है। मैं आपका पुत्र कहलाने योग्य नहीं हूँ।"

कपिल ने इतना कहा और सिर झुका लिया। पिता की आँख से आँख मिलाने की हिम्मत अब उसमें न थी। उसे निश्चय था कि सम्राट् अग्निमित्र अवश्य उसे भीषण दण्ड देंगे।

सारे दरबार में सन्नाटा छाया हुआ था। सभी दरबारी एक टक दृष्टि से सम्राट् की ओर देख रहे थे। इस नीरवता को चीरता हुआ सम्राट् अग्निमित्र का कठोर स्वर गूँज उठा। उन्होंने कहा—

"कपिल तुम्हारा अपराध बहुत भारी है, इसका दण्ड भी कड़ा होगा। इसका परिणाम तुम्हें उमर भर भुगतना होगा। मैं तुम्हें राजकुमारी माया के हवाले करता हूँ। उसके स्नेह बन्धन में बन्ध कर रहना होगा, आयु भर।"

सम्राट् ने इतना कहा और एक क्षण के लिए रुक गए। उनकी आवाज़ अपनी कठोरता खो चुकी थी; उनके होठों पर एक हल्की सी मुस्कान खेल रही थी। उन्होंने स्नेह-स्निग्ध वाणी में फिर कहना शुरू किया—"कपिल! सिर ऊँचा उठाओ! तुम क्षत्रिय हो; क्षत्रिय का सर्वप्रथम धर्म है—स्त्री जाति, ब्राह्मण और गौ की रक्षा करना। सच्चे क्षत्रिय के नाते तुम्हारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य राजकुमारी माया की प्राण-रक्षा करना था। अश्वमेध यज्ञ का महत्त्व बहुत है। परन्तु एक क्षत्रिय के लिये इससे भी अधिक महत्त्वशाली कार्य है—स्त्री जाति, ब्राह्मण और गौ की रक्षा करना।